योगविद्या

वर्ष 7 अंक 4
अप्रैल 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 60 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर तथा अन्दर के रंगीन फोटो: बसंत पंचमी, 2018

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सेवा की महत्ता

मानव-जीवन सेवा के लिए है। जनसेवा के प्रति जीवन समर्पित कर दें। जितनी शक्ति आप दूसरों की सेवा में लगायेंगे, उतनी दिव्य शक्ति आप पर बरसेगी। सेवा द्वारा ही आप दूसरों के मन पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

सेवा से अपने मन की शुद्धि तो होती ही है, इसके साथ ही अहंकार, घृणा, ईर्ष्या, स्वार्थ तथा अभिमान की भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं; नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता तथा दया के गुण भी पनपते हैं; पार्थक्य की दुर्भावना मिटती है और अन्त में आपको आत्मदर्शन हो जाता है।

मुक्ति के मार्ग का रहस्य निष्काम सेवा में ही छिपा है। आरम्भ में निरन्तर निष्काम सेवा द्वारा ही साधकों को अपनी स्वार्थ-भावना को मिटाने का प्रयास करना चाहिए। निर्धनों तथा दु:खी लोगों की निष्काम सेवा कर अपना हृदय शुद्ध करें।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 4 · अप्रैल 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 मानसिक एकाग्रता
7 व्यक्तित्व परिवर्तन की कुंजी—योगनिद्रा
13 यौगिक जीवनशैली और सदाचार
18 दो यात्री
19 गृहस्थाश्रम और योग
23 योग साधना में स्वाध्याय का महत्त्व
26 हृदय की शुद्धि
34 योग एवं शिक्षा
40 सत्यम् वाणी
50 सुख, आनन्द और कर्म

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

मानसिक एकाग्रता

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

योग सूत्रों में महर्षि पतंजलि मानसिक एकाग्रता के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं– *तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यास:* अर्थात् योग में आने वाली बाधाओं एवं उनके सहगामी लक्षणों के निराकरण के लिए किसी एक तत्त्व पर एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए।

सांसारिक सुख भोग की अभिलाषा को तीव्र करते हैं। इसलिए सांसारिक लोगों का मन बहुत चंचल होता है। आप चाहे कितने ही भोग-विलास का संग्रह कर लें, फिर भी मन कभी संतुष्ट नहीं होगा। जितना अधिक यह सुखों का भोग करता है, उतना और पाना चाहता है। इसलिए लोग अपने ही मन से परेशान और व्याकुल हैं। वे अपने मन से तंग आ गए हैं। उनकी परेशानियों और व्याकुलता को दूर करने के लिए ऋषि-मनीषी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मन को सभी इन्द्रिय सुखों से विलग कर देना ही उचित है। जब मन एकाग्र हो जाता है तो मनुष्य अन्य सुखों की तलाश छोड़ देता है। सभी चिन्ताएँ-परेशानियाँ सदा के लिए दूर हो जाती हैं और व्यक्ति को वास्तविक शान्ति का अनुभव होता है।

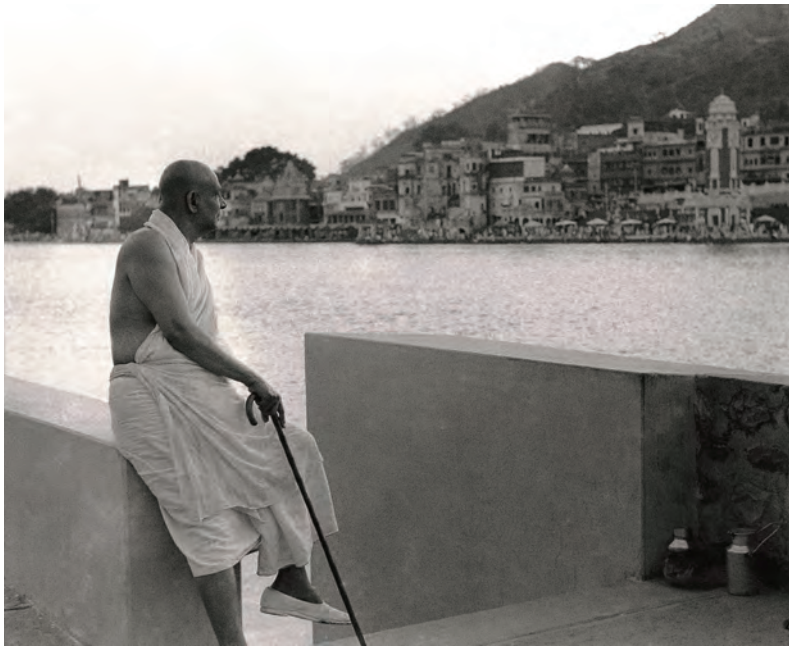

मन का स्वभाव

संसाराभिमुख व्यक्ति का मन विभिन्न विषय-वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। उसकी मानसिक शक्ति कई दिशाओं में बिखर जाती है। जब मन की किरणें अलग-अलग वस्तुओं की ओर छितराई हुई रहती हैं तो आपको दु:ख मिलता है। जब अभ्यास के द्वारा इन किरणों को एकत्रित किया जाता है तो मन एकाग्र हो जाता है और आपको भीतर से आनन्द की प्राप्ति होती है।

जब अनेक वर्षों के पश्चात् आप अपने प्रिय मित्र से मिलते हैं तब आनन्द की जो अनुभूति आपको होती है वह उस व्यक्ति से नहीं, बल्कि आपके भीतर से होती है। कुछ समय के लिए मन एकाग्र हो जाता है और आपको अपने भीतर से प्रसन्नता प्राप्त होती है। अगर आप काश्मीर में गुलमर्ग, सोनमर्ग, चश्मेशाही और अनन्तनाग के मनोरम दृश्यों का आनन्द ले रहे हों और उस समय यदि आपको अपने इकलौते बेटे की अकाल मृत्यु की सूचना मिले तो आपका मन इस सदमे से अचानक अशान्त हो जाएगा। उन दृश्यों में अब आपकी कोई रुचि नहीं रहेगी, बल्कि अवसाद होगा। इससे सिद्ध होता है कि सैर-सपाटे में भी एकाग्रता और ध्यान ही आपको प्रसन्नता देता है।

एकाग्रता के लिये आपको धैर्य के साथ वैराग्य और अभ्यास द्वारा मन की बिखरी किरणों को एकत्रित करना होगा और फिर निर्भीकता एवं उत्साह के साथ ब्रह्म की ओर बढ़ना होगा। निरन्तर साधना के द्वारा मन की बहिर्मुखता पर अंकुश लगाना होगा। इसे इसके मूल स्रोत, ब्रह्म की ओर मोड़ना होगा।

मन की तुलना एक बंदर से की जाती है क्योंकि यह एक चीज से दूसरी चीज पर कूदता रहता है। इसकी तुलना बहती वायु से की जाती है क्योंकि यह अस्थिर और चंचल है। क्रोधपूर्ण उतावलेपन के कारण इसकी तुलना एक उग्र, मस्त हाथी से की जाती है। जैसे एक पक्षी वृक्ष की एक शाखा से दूसरी शाखा, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदता रहता है वैसे ही मन एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर कूदता रहता है। राजयोग का विज्ञान हमें अपने मन को एकाग्र करना और फिर अपने मन की आन्तरिक गुहाओं की छानबीन करना सिखाता है।

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध—मन की ये पाँच अवस्थाएँ होती हैं। क्षिप्त अवस्था में मन की किरणें विभिन्न वस्तुओं पर बिखरी रहती हैं। यह चंचल होता है और एक वस्तु से दूसरी पर कूदता है। मूढ़ अवस्था में मन मंद और भुलक्कड़ होता है। विक्षिप्त मन दो विपरीत स्थितियों के बीच डोलता है—कभी यह स्थिर होता है और कभी उद्विग्न। धारणा के अभ्यास द्वारा साधक अपने मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है। एकाग्र अवस्था में यह एक बिन्दु पर स्थिर रहता है। मन में केवल एक विचार रहता है। निरुद्ध अवस्था में सभी मनोवृत्तियों का विलय हो जाता है और मन पूर्णरूप से नियंत्रण में रहता है। मन की वृत्तियों का निरोध करने के लिये धारणा एवं ध्यान का अभ्यास किया जाता है।

यौगिक विधियों द्वारा आप अपने मन को अपने नियंत्रण में रख सकते हैं और जैसा चाहें वैसा कार्य इससे करवा सकते हैं। जिसने अपने मन को नियंत्रित करना सीख लिया है वह सम्पूर्ण प्रकृति को अपने नियंत्रण में रख सकता है।

मानव मन की शक्ति की कोई सीमा नहीं है। यह जितना अधिक एकाग्र होगा उतनी अधिक शक्ति एक बिन्दु पर लाई जा सकती है। एक वैज्ञानिक अपने मन को एकाग्र करके बहुत-सी चीजों का आविष्कार करता है। एकाग्रता के द्वारा वह स्थूल मन की परतों को खोलता जाता है और मन के उच्च क्षेत्रों में प्रवेश करके गूढ़ ज्ञान प्राप्त करता है। वह अपने मन की सभी ऊर्जाओं को एक केन्द्र पर एकाग्र करके उन्हें विश्लेषण किये जाने वाले पदार्थों पर डालता है और उनके रहस्य को जान लेता है।

व्यावहारिक परामर्श

चिकित्सा शास्त्र के कुछ विद्यार्थी दाखिला लेने के तुरंत बाद ही चिकित्सा महाविद्यालय छोड़ देते हैं क्योंकि वे घावों से पीब साफ करने और मुर्दों की चीड़-फाड़ करने में घृणा महसूस करते हैं। वे एक बड़ी भूल करते हैं, क्योंकि रोग विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान, जीवाणु विज्ञान, शल्य चिकित्सा आदि विषयों का अध्ययन करने के पश्चात् अंतिम वर्ष में पाठ्यक्रम बहुत रुचिकर हो जाता है।

बहुत-से आध्यात्मिक साधक कुछ समय के पश्चात् एकाग्रता की साधना छोड़ देते हैं क्योंकि इसका अभ्यास करना उन्हें कठिन लगता है। वे भी चिकित्सा शास्त्र के उन अधीर विद्यार्थियों की तरह बहुत बड़ी गलती करते हैं। शुरू में जब आप शारीरिक सजगता से ऊपर उठने के लिये संघर्ष करते हैं तो यह बहुत कठिन प्रतीत होगा। आपको शरीर और मन से कुश्ती करनी होगी। संकल्प-विकल्प, भाव-विचार अत्यधिक होंगे। पर अभ्यास के कुछ वर्षों बाद मन शांत, पवित्र और मजबूत होने लगेगा। आपको परमानंद प्राप्त होगा। सम्पूर्ण विश्व के सभी सुख ध्यान में प्राप्त आनंद की तुलना में कुछ भी नहीं हैं।

किसी भी कीमत पर अपना अभ्यास न छोड़ें। परिश्रम करते रहें और धैर्य, प्रसन्नता एवं दृढ़ता बनाये रखें। अन्ततः आप अवश्य सफल होंगे। कभी निराश न होएँ। गंभीरतापूर्वक आत्म-निरीक्षण करें और एकाग्रता में अवरोध डालने वाली विभिन्न बाधाओं को जानें। फिर एक-एक करके धैर्य और प्रयत्न के द्वारा उन्हें दूर करें। नई कामनाओं और वासनाओं को एकाएक प्रकट न होने दें। विवेक और विचार द्वारा इन्हें बढ़ने से पहले ही रोक दें।

यदि आप हमेशा प्रसन्नचित्त रहते हैं, यदि आपका मन संतुलित और एकाग्र रहता है तो जान लें कि आप योग में प्रगति कर रहे हैं और आपके भीतर सत्त्व बढ़ रहा है।

व्यक्तित्व परिवर्तन की कुंजी–योगनिद्रा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

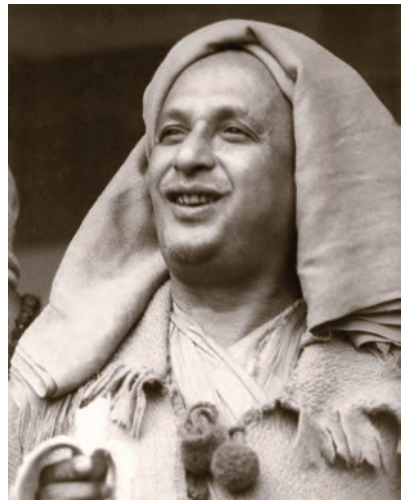

युगों से मानव एक स्वप्न के पीछे दौड़ता आ रहा है और उसकी खोज अब तक जारी है। अज्ञान और अंधकार के इस परिवेश में योग का विज्ञान उसे आत्मज्ञान प्रदान कर सकता है। उसे ऐसी आत्मानुभूति हो सकती है कि सभी प्रयत्न असफल हो जाने पर भी आत्मज्योति उसका मार्गदर्शन करेगी। वैयक्तिक विज्ञान होते हुये भी योग में व्यक्तित्व का प्रत्येक पहलू अन्तर्निहित है। चाहे वह आपके भावनात्मक जीवन से सम्बद्ध हो, चाहे आपकी विचारधारा हो, चाहे वह आपके व्यक्तिगत या व्यावसायिक जीवन की समस्याओं का निदान ही क्यों न हो–सभी योग के अन्तर्गत सन्निहित हैं। विश्व के अनेक देशों में इस महान् विज्ञान के लाभ एवं महत्त्व के सम्बन्ध में अनेक अनुसंधान एवं शोधकार्य हो रहे हैं। इनमें ऐसे देश भी हैं जो आध्यात्मिक परम्परा में दृढ़ विश्वास रखते हैं तथा ऐसे देश भी हैं जो पूर्णतया भौतिकवादी दृष्टिकोण रखते हैं।

आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व अनुसंधान की योजनाएँ उत्साहवर्धक नहीं प्रतीत होती थीं तथा इनसे कोई विशेष सफलता मिलने की संभावना भी परिलक्षित नहीं होती थी। आज का मानव उन बातों पर आश्वस्त नहीं हो सकता जिन्हें वह व्यक्तिगत अनुभव या वैज्ञानिक तथ्यों द्वारा प्रमाणित नहीं कर सकता। पहले जमाने में संन्यासी, पुजारी और पुरोहित हमारी सभ्यता के श्रेष्ठजन माने जाते थे। वे अभी भी हैं पर आज की परिस्थिति में वे जनमानस पर पहले जैसा प्रभुत्व नहीं रखते। आज के जनमानस पर प्रभुत्व रखने वाले पुजारी हैं इंजीनियर, डॉक्टर, प्रोफेसर और वकील, क्योंकि इनके व्यवसायों का आधार पूर्णत: वैज्ञानिक है। इसलिए योग का वैज्ञानिक आधार होना अत्यन्त आवश्यक है।

पहले जमाने में योग को रहस्यवादी तथा आध्यात्मिक विज्ञान समझा जाता था। इसका दर्शन काले जादू और इन्द्रजाल से सम्बद्ध था। परन्तु पिछले दो या तीन दशकों में योग पर जो वैज्ञानिक शोध और अनुसंधान किये गये हैं उनसे हम इस

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि योग उन सभी व्यक्तियों के लिये है जो परिश्रम करते हैं, जो सुख-दु:ख से भरा जीवन व्यतीत करते हैं। यह उन व्यक्तियों के लिये है जो अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा व्यावसायिक जीवन में तन-मन से लगातार संघर्ष करते रहते हैं। सोच-विचार करना, अनुभव करना, कर्म करना—ये सभी मनुष्य की सीमाएँ और समस्याएँ हैं।

विश्व में जितने भी महान् व्यक्ति हुए हैं उन्होंने अपनी शक्तियों को जागृत करके ही महानता प्राप्त की है। अगर कोई इन शक्तियों को जागृत न कर सके तो वह महान् कैसे हो सकता है? अगर कोई अपने मन को अनुशासित न करे तो उसे उपलब्धि कैसे हो सकती है? पर मन का दमन अनुशासन नहीं कहला सकता। मन के मूलभूत आधार को परिवर्तित करके कुछ ही समय में अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन लाया जा सकता है और योगनिद्रा का अभ्यास उसकी एक गुप्त कुंजी है। इस प्रसंग में एक छोटा-सा उदाहरण प्रस्तुत है।

कैदियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन

लगभग बारह वर्ष पहले जब मैं अमेरिका के न्यूयॉर्क राज्य के भ्रमण पर था तो राज्य कारावास अधिकारियों ने मुझे आमंत्रित किया। वह इसलिये कि उनके एक कारावास में करीब 600 कैदियों को योग प्रशिक्षण दिया जाए। जब मैं कारावास पहुँचा और वहाँ के हॉल में शोरगुल और भगदड़ देखी तो मैंने सोचा कि मुझसे भूल हो गई है। मैंने अपने आप को इस तरह के व्यक्तियों के बीच घिरा पाया जो बिना किसी नियंत्रण के उछल-कूद करते, किलकारी मारते हुए जानवरों की तरह व्यवहार कर रहे थे। वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि मैं कौन हूँ। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं भारत से आया एक संन्यासी हूँ तो वे ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले कि वे भारत के साधु-संन्यायिसों को तो नहीं, बंदरों को जरूर जानते हैं! उन्हें योग में कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर उन लोगों ने मेरी धोती, मुड़े हुए सिर, गले में लटकी मालाओं और अन्य विचित्रताओं के विषय में जरूर जानना-समझना चाहा। मैं वहाँ उन लोगों को आसन सिखाने गया था, पर वे लोग इतने अनियंत्रित थे कि किसी की सुनते ही नहीं थे। मैंने उनके वॉर्डन को संकेत किया कि वे लोग किसी तरह लिटा दिये जाएँ और मेरे निर्देशों को सुनें।

मन-ही-मन मैं सोच रहा था कि जब वे लेटकर आँखें मूंद लेंगे तो मैं तुरन्त यहाँ से चल दूँगा। लेकिन लेट जाने के बावजूद उन्होंने एक-दूसरे को लात मारना शुरू कर दिया। माइक्रोफोन पर बार-बार मैंने दो वाक्यों को ही दोहराया—कृपया अपनी आँखें बन्द रखें तथा अपने शरीर को न हिलायें। करीब आधे घण्टे बाद जब मैंने महसूस किया कि मेरे निर्देश प्रभावहीन हो रहे हैं, तो मैं वहाँ से उठा और सीधे बाहर आ गया। मैंने यह निश्चय कर लिया कि यहाँ प्रशिक्षण का कार्य

नहीं करूँगा। परन्तु जब मैंने शाम को अधिकारियों को टेलीफोन से सूचित किया कि मेरे प्रशिक्षण कार्य को रद्द कर दिया जाए तो उन्होंने बहुत आग्रह करते हुए बताया–'स्वामीजी, आज कैदी बिल्कुल चुप हैं। आज उन लोगों ने टेलीविजन बिल्कुल नहीं देखा और भोजन के लिये भी बिल्कुल चुपचाप पंक्तिबद्ध खड़े थे। उसके बाद बिना लड़ाई-झगड़े के अपने-अपने बिस्तर पर सोने के लिये चले गये थे।'

अगले दिन मैं वहाँ गया तो वे पहले से ही लेटे हुए थे तथा प्रारम्भ करने की प्रतीक्षा में थे। जब मैंने उन्हें सूर्य नमस्कार के अभ्यास के लिये खड़ा होने के लिये कहा तो उन्होंने विरोध प्रकट किया और कहा, 'स्वामीजी, हम लोग वही योग चाहते हैं जो आपने पिछले दिन बताया था।' पन्द्रह दिनों तक मैंने उन्हें योग निद्रा का ही प्रशिक्षण दिया। अन्त में उन लोगों ने मेरे विदाई समारोह का आयोजन किया, मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट की, मुझे उपहार दिया तथा मेरी वापसी यात्रा के लिये टिकट की व्यवस्था भी की।

पहले दिन एक कैदी ने मुझे पीने के लिये सिगरेट बढ़ाया था, पर अंतिम दिन वही व्यक्ति आकर बोला, 'स्वामीजी, आप एक महान्, पवित्र आत्मा हैं। मुझे बहुत खेद है कि उस दिन मैंने आपको सिगरेट बढ़ाया था।' उन कैदियों की चेतना में बहुत बड़ा परिवर्तन हो चुका था। जेल अधिकारियों ने भी इस बात को स्वीकार किया कि कैदियों के व्यवहार एवं दृष्टिकोण में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। वे मेरे साथ कीर्तन-भजन करते, आसन सीखते तथा योगनिद्रा का अभ्यास करते थे।

इस प्रकार योगनिद्रा का वह अल्पकालीन अभ्यास उन कैदियों के मन-मस्तिष्क में जादुई प्रभाव डालकर काफी परिवर्तन ले आया था। मैं योग का जो प्रशिक्षण देता हूँ वह वैज्ञानिक पद्धति है। योग का प्रशिक्षण एक पंथ या संस्था की तरह न होकर एक विज्ञान की तरह होना चाहिये, क्योंकि योग मानव जाति के सुख, शांति तथा स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

योग के प्रमुख घटक

योग के प्रशिक्षण में चार प्रमुख अभ्यासों की जानकारी आवश्यक है—आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा और ध्यान योग। आप इसका अभ्यास नियमित रूप से करें। तब आप ही नहीं, आपके मित्र, परिवार के सदस्य तथा अन्य व्यक्ति भी आप में परिवर्तन पायेंगे। जिस तरह भगवान विष्णु सहस्र-फण वाले शेषनाग पर योगनिद्रा में शयन कर रहे हैं, उसी तरह हम प्राणियों को भी चाहिये कि जीवन की कठिनाइयों एवं समस्याओं का निदान करते हुए अपनी व्यवस्था करें तथा बाह्य जगत् के बन्धनों से अपने मन को उन्मुक्त कर अन्तर्जगत् के वैभव का आनन्द प्राप्त करें।

मनुष्य को अन्तर्जगत् की समस्याओं के निदान की प्रक्रिया अवश्य स्पष्ट होनी चाहिये। मानव को आध्यात्मिक समस्याओं का संतोष-जनक निराकरण अब तक ज्ञात नहीं हो सका है, जिस कारण मानव आज आतंकित और चिन्तापूर्ण स्थिति में है। मनोवैज्ञानिक अवलोकन से मानव की दयनीय मानसिक स्थिति की जानकारी प्राप्त हो सकती है। आत्महत्या, यौन अपराध एवं मानसिक असंतुलन से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या आज चिन्ताजनक गति से बढ़ती जा रही है। इससे यही पता चलता है कि परम्परागत, सांस्कृतिक मान्यताएँ आज के जीवन में असफल हो रही हैं, क्योंकि इनमें व्यावहारिक योग के आवश्यक तत्त्व का सर्वथा अभाव है। ये हमारे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं के निदान में असफल हो रही हैं, चाहे वे समस्याएँ व्यक्ति-विशेष की हों या समाज की।

इस संघर्ष का सामना योग की व्यावहारिक पद्धति द्वारा किया जा सकता है। वैज्ञानिक परीक्षणों तथा डॉक्टरों के इलाज के क्रम में योग के आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं जिससे युगों से चली आ रही योग-पद्धति की उपादेयता प्रमाणित होती है। निश्चित रूप से यह प्रमाणित किया जा चुका है कि योग के अभ्यास से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में सुधार होता है। पिछले कुछ वर्षों के प्रयोग ने योग के कार्यक्षेत्र को जेलों, शैक्षणिक संस्थाओं, मानसिक अस्पतालों तथा नशे से ग्रस्त लोगों तक विस्तृत कर दिया है। जिन तथ्यों को ऋषि-मुनियों और महात्माओं ने अपने अंतर्ज्ञान से प्राप्त किया था उन्हें आज वैज्ञानिकों ने परीक्षण द्वारा जानना आरम्भ किया है। फिर भी अभी योग में बहुत कुछ है जिसका परीक्षण नहीं हो सका है।

अनुसंधानों के पश्चात् मिली जानकारियों से पता चलता है कि योगासन मात्र शारीरिक व्यायाम ही नहीं हैं, बल्कि इनमें ऐसी क्षमता है कि ये अन्त:स्रावी ग्रंथियों और उनके हॉर्मोन स्रावों को नियंत्रित कर उनमें संतुलन स्थापित करते हैं। आसन के निरंतर अभ्यास से अधिकांश रोग दूर किये जा सकते हैं, यहाँ तक कि कई असाध्य रोग भी। दमा, उच्च-रक्तचाप, मानसिक गड़बड़ियाँ, पाचन सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, कब्जियत तथा ऐसे अन्य कई रोगों का योग द्वारा निदान हो सकता है। इसी तरह प्राणायाम के अभ्यास से मस्तिष्क की अन्तर्निहित शक्तियों को जाग्रत किया जा सकता है। प्राणायाम का उद्देश्य मात्र अधिक ऑक्सीजन लेना ही नहीं। प्राणायाम अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ी-संस्थान के असंतुलन को प्रभावित और नियंत्रित करता है।

ध्यानयोग के सम्बन्ध में शोध से पता चलता है कि यह मात्र बौद्धिक, धार्मिक या रहस्यवादी विधि नहीं है, बल्कि ध्यान के अभ्यास से मस्तिष्क की तरंगों में परिवर्तन हो सकता है, हृदय संस्थान में रक्त-चाप को कम किया जा सकता है तथा शरीर में होने वाली चयापचय पद्धति में संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

योगनिद्रा की उपयोगिता

इसके अलावा योग में एक अत्यन्त शक्तिशाली और लाभदायक अभ्यास है, जिस पर आज मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह अभ्यास है योगनिद्रा। चूँकि योगासन और प्राणायाम सर्वविदित हैं तथा असंख्य योग शिक्षकों द्वारा विश्व भर में प्रचारित हैं, इसलिए योगनिद्रा की प्रस्तावना आज अत्यधिक आवश्यक प्रतीत होती है।

योगनिद्रा की विधि मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक उद्वेगों में संतुलन स्थापित करती है। यह एक पूर्ण व्यवस्थित पद्धति है जिससे मानसिक विश्रान्ति प्राप्त होती है। इसके अभ्यास से स्थिर होकर मानव एकाग्रता प्राप्त करता है। योगनिद्रा का अर्थ है यौगिक निद्रा या मानसिक निद्रा। यह पूर्ण विश्रान्ति की, निद्रा एवं जाग्रत अवस्था के मध्य की स्थिति है। यह शरीर तथा बाह्य जगत् से व्यक्ति की चेतना को सुव्यवस्थित ढंग से समेट कर प्रत्याहार की अवस्था में लाती है। इस गहरी विश्रान्ति की स्थिति में मनुष्य का अर्धचेतन तथा अचेतन मन से सम्पर्क होता है जहाँ भय, स्मृतियाँ, कुंठाएँ, मन के तनाव आदि भरे रहते हैं एवं जो प्रतिदिन उसे उद्विग्न करते रहते हैं। अगर आप तटस्थ द्रष्टा की तरह इन्हें देखते रहें तो आपकी आधि-व्याधियाँ बिना विशेष प्रयास किए कम हो सकती हैं।

योगनिद्रा का अभ्यास लेटकर किया जाता है। इस स्थिति को शवासन भी कहा जाता है। आप आँखों को बन्द कर आरामपूर्वक लेट जायें। शरीर के प्रत्येक

अंग को ढीला छोड़ दें तथा इसके बाद कोई सकारात्मक संकल्प करें। इसके बाद शरीर के विभिन्न अंगों में चेतना का परिभ्रमण कराना होता है ताकि विश्रान्ति प्राप्त हो सके। इसके साथ ही श्वसन क्रिया की सजगता भी निरंतर रखनी होती है। संवेगात्मक विश्रान्ति हेतु शीत-उष्ण, हर्ष-शोक या हल्केपन-भारीपन के अनुभव भी किये जाते हैं। इसके पश्चात् मानसिक दृश्यों के अवलोकन से पूर्ण मानसिक विश्रान्ति कराई जाती है।

बम्बई के के.ई.एम. अस्पताल में कार्डियोलॉजी के विभागाध्यक्ष, डॉ. दाते द्वारा योगनिद्रा के प्रभाव पर शोधकार्य सम्पन्न किया गया है। उन्होंने 46 रोगियों को, जिनमें पुरुष और महिलाएँ दोनों थे, तथा जिनकी उम्र 22 वर्ष से लेकर 64 वर्ष तक की थी, योगनिद्रा का प्रशिक्षण दिया। ये सभी रोगी उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे। इस प्रशिक्षण का नाम उन्होंने 'शवासन' दिया। इसमें वे लयबद्ध श्वसन के प्रति चेतनता का साधारण अभ्यास कराते तथा इसके साथ ही शरीर के विभिन्न अंगों एवं विभिन्न शारीरिक गतिविधियों के प्रति जागरूकता बनाये रखने का निर्देश भी देते थे।

प्रारम्भ में प्रतिदिन इन रोगियों को समुचित देखरेख में 3 मिनट का अभ्यास कराया गया। बाद में वे लोग स्वयं बिना देखरेख के अभ्यास करने लगे। उन लोगों की हृदय गति, रक्तचाप एवं श्वसन क्रिया को प्रत्येक अभ्यास के पूर्व और पश्चात् नोट किया गया। साथ ही इन रोगियों को जो औषधि दी गई उसका भी विवरण रखा गया। समय-समय पर इसकी पुनरावृत्ति भी की गई। अधिकांश रोगियों में महत्त्वपूर्ण परिणाम पाये गये तथा इन परिणामों के विस्तृत प्रतिवेदन का प्रकाशन भी हुआ। सभी रोगियों का सिर दर्द, चिड़ाचिड़ापन, अनिद्रा और घबराहट दूर हो गये तथा अन्य गंभीर बीमारियों के लक्षण हल्के प्रतीत होने लगे।

इलेक्ट्रो-इन्सेफेलोग्राम से जाँच के परिणामस्वरूप पता चलता है कि योगनिद्रा के अभ्यास काल में मस्तिष्क की अल्फा तरंगों में वृद्धि होती है और व्यक्ति को गहन विश्राम की स्थिति प्राप्त होती है। चिन्ता, साइकोसिस, हिस्टीरिया तथा अन्य तरह की मनोवैज्ञानिक समस्यायें, मनोकायिक असंतुलन, हृदयरोग, मधुमेह, दमा, चर्मरोग, अल्सर इत्यादि रोगों में योगनिद्रा के लगातार अभ्यास से बहुत लाभ प्राप्त होता है। सिज़ोफ्रेनिया तथा मानसिक विक्षिप्तता की स्थिति में भी इसका प्रयोग लाभदायक पाया गया है। योगनिद्रा का अभ्यास सीखना सरल है तथा किसी भी व्यक्ति को इसका प्रशिक्षण दिया जा सकता है। इसके लिये न किसी उपकरण की आवश्यकता है और न ही कोई दुष्परिणाम की आशंका। इसलिए मैं इसे आधुनिक मानव के स्वास्थ्य और व्यक्तित्व परिवर्तन की कुंजी मानता हूँ।

–मूलत: योगविद्या के अगस्त, 1980 अंक में प्रकाशित

यौगिक जीवनशैली और सदाचार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

बसंत पंचमी के पावन दिन बिहार योग विद्यालय अपने 55वें स्थापना दिवस को मना रहा है। जहाँ तक हमारी सोच, समझ और दृष्टि है, यह वर्ष बिहार योग विद्यालय, मुंगेर के लिये एक अत्यन्त निर्णायक वर्ष है। निर्णायक इसलिये कह रहा हूँ कि अब योग विद्या परम्परा का जो प्रसार यहाँ से होने वाला है वह समाज की चेतना को परिवर्तित करेगा। हमारे मनीषियों ने योग की कल्पना केवल आसन-प्राणायाम के रूप में नहीं की है। कोई रोज सबेरे उठकर आसन करे, प्राणायाम करे, कसरत करे और सोचे कि वह आध्यात्मिक जीवन बिताता है, यह उसकी गलतफहमी है। आसन-प्राणायाम तो योग के बहुत छोटे अंग हैं। अन्त में योग का उद्देश्य और प्रयोजन होता क्या है?

मनीषी कहते हैं कि योग का उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार है, समाधि है, मुक्ति है, निवृत्ति है, लेकिन किसी भी विद्या को समयानुकूल होना चाहिये। आखिर महात्मा बुद्ध ने भी अनेक विधियों, अनुष्ठानों और साधनाओं का प्रयोग किया था। बौद्ध मत में आज जो प्रचलित मान्यताएँ-पद्धतियाँ हैं वे महात्मा बुद्ध की व्यक्तिगत साधना के परिणाम हैं, लेकिन आम जनता को उन्होंने जो शिक्षा दी वह अहिंसा की थी। उन्होंने अपनी तपस्या की शिक्षा नहीं दी, बल्कि अहिंसा की शिक्षा दी क्योंकि उस समय सामाजिक स्तर पर अहिंसा को स्थापित करने से समाज और व्यक्ति के जीवन में शान्ति आ सकती थी।

वैसे ही हमारे जैन तीर्थंकर हुए हैं जो त्यागमय, तपोमय और साधनामय जीवन व्यतीत करते थे, लेकिन समाज में वे अहिंसा की बात बोलते थे, अपनी साधना की नहीं। साधना की बात उसी को बोलेंगे जो इसे समझेगा, जो उनका सहयोगी है या विद्यार्थी है या साधक है या शिष्य है। लेकिन जनता को 'ऐसा ध्यान लगाओ, ऐसा त्याग करो, ऐसा अनुष्ठान करो, ऐसा व्रत करो' यह नहीं कहते, बल्कि कहते हैं कि भाई, अच्छा आचरण करके जीवन जीना सीखो, कुछ उपयोगी नियमों का

पालन करो, जीवन में अच्छाई को लाने के लिये अणुव्रत धारण करो। अणुव्रत का मतलब होता है छोटा-सा संकल्प और छोटे संकल्प से ही हमलोगों को यात्रा आरम्भ करनी है।

स्वामी शिवानन्द जी की यौगिक परिकल्पना

इस प्रकार अन्य मनीषियों के जीवन को भी देखोगे तो यही व्यवहार दिखेगा। संन्यास परम्परा में योग संन्यास जीवन का दर्शन नहीं है, बल्कि आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त दर्शन हमलोगों का पथ-प्रदर्शक है। लेकिन हम वेदान्त दर्शन की बात आपसे कभी नहीं कहते हैं। अभी तक जो भी बात कही गई वह योग की कही गई, क्योंकि आज समाज को उसकी आवश्यकता है, वेदान्त की नहीं।

स्वामी शिवानन्द जी भी यही कहा करते थे। वे कहते, 'जिस आदमी का दम फूल रहा है, जो पीड़ा से कराह रहा है, उसको वेदान्त की शिक्षा दोगे क्या? उससे यह कहोगे कि तुम शरीर नहीं हो, तुम ब्रह्म हो, तुम्हारा दु:ख-दर्द से कोई रिश्ता नहीं? नहीं, उस व्यक्ति को वेदान्त की शिक्षा नहीं, दवा देनी है जिससे वह अपने दु:ख-दर्द से मुक्त हो सके।' उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दिया, 'तुमलोग वेदान्त दर्शन का प्रचार मत करो, बल्कि जगह-जगह जाकर योग का प्रचार करो, जो आज के युग की आवश्यकता है।'

उन्होंने जिन-जिन शिष्यों को यह आदेश दिया वे शिष्य भारत में तथा बाहर के राष्ट्रों में योग का प्रसार-प्रचार करने लगे। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी के शिष्यों ने आज तक योग का जो प्रचार-प्रसार किया है, वह योग का मात्र एक अंग

ही है। किसी ने हठयोग को पकड़ा है तो किसी ने राजयोग को, किसी ने ज्ञानयोग को तो किसी ने भक्तियोग को, किसी ने कर्मयोग को तो किसी ने क्रिया और कुण्डलिनी योग को। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी की परिकल्पना थी कि सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व के विकास हेतु, अच्छे संस्कारों के निर्माण हेतु और अपने जीवन की प्रतिभाओं के विकास हेतु योग विद्या का प्रसार करना है। स्वामी शिवानन्द जी ने योग का एक लक्ष्य निर्धारित करते हुए कहा कि आधुनिक संदर्भ में योग की पूर्णाहुति आत्म-साक्षात्कार में नहीं, बल्कि मनुष्य की सदाचार-वृत्ति में होगी।

बिहार योग विद्यालय का प्रथम अध्याय–स्वास्थ्य और शांति

पिछले पचास सालों तक बिहार योग विद्यालय ने शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति–इन दो बिन्दुओं को लेकर योग का प्रचार पूरे विश्व में किया। अनेकों अनुसंधान, प्रयोग और प्रशिक्षण किए गए यह स्थापित करने के लिये कि किस प्रकार एक व्यवस्थित, अनुशासित और यौगिक जीवन बिताने से मनुष्य जीवन के रोग स्वत: दूर हो सकते हैं। इसी तरह शान्ति को लेकर प्रयोग हुए। जिस चिन्ता, तनाव और दबाव से मनुष्य का मन, बुद्धि और भावना व्यथित होते हैं, कैसे हम अपने आपको उनके प्रभावों से मुक्त करके अपने जीवन में शान्ति का अनुभव कर सकते हैं। तनावमुक्ति का अभियान भी चला जिससे लोगों को अपने चंचल मन को शान्त करने में सहायता मिली। इन दोनों उद्देश्यों को सामने रख करके योग का प्रचार पूरे विश्व में हुआ। निजी और सरकारी संस्थानों, उद्योगों और प्रतिष्ठानों में प्रचार हुआ, विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रचार हुआ, सब जगह योग छा गया।

द्वितीय अध्याय–जीवनशैली और सदाचार

सन् 2013 में जब मुंगेर में विश्व योग सम्मेलन हुआ था उस समय घोषणा की गई थी कि योग प्रचार का कार्य अब पूरा हो गया है। विगत पचास सालों में बिहार योग विद्यालय ने योग प्रचार में अपना योगदान दिया और अब पूरी दुनिया में लोग योग कर रहे हैं। यहाँ तक कि अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस की घोषणा भी हो गई।

सन् 2013 में यह बात भी कही गयी थी कि दूसरे अध्याय के आरम्भ की प्रतीक्षा है। सन् 2014 से 2017 तक, इन चार सालों में योग विद्या को समझने के लिये, योग विद्या को आत्मसात् करने के लिये, अपने आपको अच्छे संस्कारों से युक्त करने के लिये, अपने जीवन की प्रतिभा को विकसित करने के लिये और जीवन में सदाचार लाने के लिये योग के कार्यक्रम तैयार किए गए हैं।

जनवरी 2018 से दूसरे अध्याय का कार्य भी आरम्भ हो गया है। जनवरी से जुलाई तक बिहार योग विद्यालय के प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा पूरे देश में साढ़े तीन

सौ स्थानों पर योग शिविरों का संचालन हो रहा है। इन स्थानों में नगर, शहर, गाँव सब शामिल हैं। छः महीनों में साढ़े तीन सौ शिविरों का आयोजन पूरे देश में हो जाए और इसके द्वारा योग की एक नयी जानकारी लोगों को प्रदान की जाए, यह एक बहुत बड़ा कार्य है।

2018 के अक्टूबर महीने में बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में एक योग संगोष्ठी आयोजित कर रहा है, जिसका प्रयोजन है बिहार योग परम्परा से जुड़े दुनिया और देश के योग शिक्षकों को योग विद्या के नए अध्याय से जोड़ना, और उसके लिये मुंगेर को तैयार भी रहना है।

इस वर्ष के कार्यक्रम बिहार योग पद्धति के दूसरे आयाम की ओर संकेत दे रहे हैं जहाँ पर अब मात्र स्वास्थ्य और शान्ति उद्देश्य नहीं, दो लक्ष्य और जुड़ जायेंगे—बेहतरीन जीवनशैली और सदाचार। यह आज के युग की आवश्यकता है। भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का पाठ पढ़ाया, स्वामी शिवानन्द

जी और स्वामी सत्यानन्द जी ने स्वास्थ्य, शान्ति, जीवनशैली और सदाचार का पाठ पढ़ाया। आज समाज की परिवर्तित अवस्था में व्यवस्थित जीवनशैली और सदाचार का ही पाठ पढ़ाना है। इसमें आप सबका सहयोग चाहिये, आप सबका योगदान भी इसमें होना जरूरी है।

–22 जनवरी 2018, बसंत पंचमी, गंगा दर्शन

मार्गदर्शन

मगध की राजधानी राजगृह के एक विहार में भगवान बुद्ध का प्रतिदिन सत्संग-प्रवचन चलता था। एक बार वैशाली से राजगृह आया एक व्यापारी उनका प्रवचन सुनने गया। वह उनकी वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि कई दिनों तक रोज उनके प्रवचन सुनते रहा। एक दिन उसके मन में एक प्रश्न उठा, 'प्रतिदिन ये महात्मा निर्वाण-प्राप्ति पर बोलते हैं, पर इनके श्रोताओं में कितने लोग वास्तव में निर्वाण पथ पर चलते हैं?'

भगवान बुद्ध को किसी समय एकान्त में पाकर उस व्यापारी ने उनके समक्ष अपनी शंका रखी। उन्होंने कहा, 'उपदेश देना मेरा कर्त्तव्य है, जिसे मैं श्रद्धापूर्वक करता हूँ। निर्वाण की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति तो व्यक्ति के प्रयत्न पर निर्भर करती है।'

'यदि कोई भी निर्वाण प्राप्त करने में सफल नहीं होता, तो आपके उपदेश तो व्यर्थ सिद्ध होंगे न?' व्यापारी ने आगे पूछा।

भगवान बुद्ध ने मुस्कुराते हुए कहा, 'तुम वेशभूषा से व्यापारी प्रतीत होते हो। किस नगर से आए हो?' 'जी, वैशाली,' उसने आदरपूर्वक निवेदित किया।

'मैंने सुना है वैशाली परम सुन्दर नगर है ...'

'बिल्कुल सही सुना है आपने। वैसा नगर शायद ही दुनिया में कहीं और मिले। लम्बी-चौड़ी सड़कें, ऊँचे भवन, सुन्दर उद्यान, सुसंस्कृत लोग ...'

भगवान बुद्ध ने बीच में पूछा, 'इस नगर तक कैसे पहुँच सकते हैं?'

'यह तो थोड़ा कठिन है। लम्बा सफर है, रास्तें में पर्वतों और नदियों को पार करना पड़ता है ...'

'अगर कोई तुमसे वैशाली जाने के बारे में पूछे तो तुम क्या करते हो?'

'उसे जाने का रास्ता जरूर बताता हूँ। आखिर वह मेरा अपना नगर है।'

'क्या तुमसे जानकारी लेने वाले सभी लोग तुम्हारे नगर जाते हैं?'

'नहीं, विरले ही जाते हैं। यात्रा के लिए बहुत धन व्यय करना पड़ता है, बहुत श्रम करना पड़ता है। यह सब करने के लिए सब लोग कहाँ तैयार होते हैं।'

'बस जो तुम करते हो, वही मैं भी करता हूँ। मैंने निर्वाण नामक एक अति सुन्दर नगर के दर्शन किये हैं। जो भी जिज्ञासु वहाँ जाने को उत्सुक हैं मैं उन्हें मार्ग अवश्य बताता हूँ। वहाँ जाना या न जाना, यह तो उनके संकल्प पर निर्भर करता है।'

दो यात्री

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

दो यात्री एक सड़क पर जा रहे थे। अचानक एक चिल्ला उठा और अपना पाँव पकड़कर बैठ गया। उसके पाँव में एक बड़ा काँटा चुभ गया था। दर्द के मारे वह अपने पैर को हिला भी नहीं पा रहा था। दूसरा आदमी कुछ देर चलता गया, फिर पीछे मुड़कर चिल्लाने लगा, 'अरे मूर्ख! हमें देर हो रही है। अगर तुम फटाफट नहीं आओगे तो हम रात होने से पहले अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच पाएँगे।

पहला आदमी बोला, 'नहीं मेरे दोस्त, जब तक यह काँटा नहीं निकलता मैं एक कदम भी नहीं चल सकता।'

दूसरे ने कहा, 'अरे, इतना नखरा क्यों कर रहे हो? चलो, जल्दी से उठो, वरना मैं अकेले आगे बढ़ जाऊँगा।' वह आधा मील ही चला होगा कि उसके पैर में भी काँटा चुभा और वह दर्द से कराहते हुए बैठ गया। छूने मात्र से दोनों की पीड़ा बहुत बढ़ जाती थी, इसलिए वे खुद काँटे निकालने में असमर्थ थे। दोनों के बीच बहुत फासला था और वे एक-दूसरे की मदद भी नहीं कर सके। वे बहुत देर तक वहाँ पीड़ा सहते रहे। अंत में जब एक तीसरा यात्री उस रास्ते से गुज़रा तो उसने दोनों के काँटे निकाले।

उसने दोनों से कहा, 'दूसरे के दर्द पर वही हँसता है जिसने खुद कभी चोट न खाई हो। अगर तुमने अपने दोस्त का काँटा उसी समय निकाल दिया होता, तो वह तुम्हारे साथ चलता और समय आने पर तुम्हारी मदद करता। तुम दोनों शीघ्र ही अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते। लेकिन दूसरे के दर्द को अनदेखा कर तुम्हें खुद कितना कष्ट झेलना पड़ा!'

इसी तरह जीवन के कंटीले पथ पर कई कठोरहृदयी मनुष्य अन्य दु:खी-पीड़ाग्रस्त लोगों को देखकर उनपर हँसते हुए आगे चल देते हैं। लेकिन जीवन-पथ कुछ ऐसा है कि देर-सबेर वही मुसीबत उन पर भी आ जाती है। सहायता के अभाव में वे कठोर मनुष्य बहुत दु:ख झेलते हैं, जब तक एक ज्ञानी महात्मा, जिसे जीवन की एकता और अखण्डता का प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है, आकर उनके दिलों में प्रेम का बीज नहीं बो देता और उन्हें एक-दूसरे की मदद के लिए प्रेरित नहीं कर देता। वह उनसे कहता है, 'दूसरे मनुष्य के जीवन में दु:ख-दर्द इसलिए रहता है कि तुम्हें उसे दूर करने और उसकी सेवा करने का अवसर मिले। तुम दूसरे की तकलीफ पर भले ही हँस सकते हो और कह सकते हो कि यह तो उसका कर्म है, पर कुछ ही समय बाद तुमपर भी वैसी ही तकलीफ आ सकती है। इस संसार के स्वभाव को पहचानो। सभी की सेवा करो, सभी से प्रेम करो, सभी में दिव्यता का दर्शन करो।'

गृहस्थाश्रम और योग

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

एक दिन महान् योगी शुकदेव शास्त्रों के कुछ गृहस्थाश्रम सम्बन्धी अंश पढ़कर विचलित हो गये। उनके पिता महर्षि व्यास ने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी एक गृहस्थ आत्मसाक्षात्कार की उपलब्धि कर सकता है। शुकदेव इस तर्क को समझ नहीं पाये। उन्होंने पिता से पूछा, 'एक गृहस्थ, जो स्वयं सांसारिक जीवन और माया से लिप्त हो, मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है? क्या गृहस्थ जीवन के आनन्दों को भोगते हुए उनसे निर्लिप्त रह सकता है? उसके कर्मों को अकर्म कैसे कहा जा सकता है? वह जल में कमल के पत्ते की तरह किस प्रकार अप्रभावित रह सकता है? उसके मन से शत्रु-मित्र, राग-द्वेष, भले-बुरे के द्वन्द्व किस प्रकार दूर रह सकते हैं? क्या वह सबको समान दृष्टिकोण से देख सकता है, विशेष रूप से तब जब द्वन्द्वों से भरे संसार में उसे रहना पड़ता है?'

चूँकि शुकदेव इस विषय को लेकर बहुत उद्विग्न थे, महर्षि व्यास ने उन्हें मिथिला के राजा जनक की कथा सुनाई। जनक महान् राजर्षि के साथ-साथ एक आदर्श गृहस्थ भी थे। वे अपने समय के एक कुशल प्रशासक थे। देखने में वे एक चक्रवर्ती सम्राट् की तरह रहते थे, परन्तु उनका मन, भावनायें और चिन्तन महान् ऋषियों जैसा था। वे स्वयं के प्रति बड़े ईमानदार थे। यह बात उनके कार्यों और विचारों द्वारा स्पष्ट थी। जो भी व्यक्ति बाहर से आता, इस महान् शासक की असाधारण विद्वत्ता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

उन दिनों सभी वर्गों के लोगों के लिए गुरु आवश्यक थे। यहाँ तक कि राजा-महाराजा भी अपने दरबार में गुरु को सम्मानपूर्वक रखते थे। कभी-कभी वे अपने गुरु के दर्शनों के लिए वन में उनके आश्रम में जाया करते थे तथा वहाँ सामान्य जन की तरह रहते थे। गुरु के आश्रम में धन या पद के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाता था। महर्षि याज्ञवल्क्य जनक के गुरु थे, जिन्हें राजा बड़ा सम्मान देते थे। महर्षि भी जनक को न केवल इसलिए चाहते थे कि वे राजा थे, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अपने भीतर वैराग्य और समदृष्टि को विकसित कर लिया था।

याज्ञवल्क्य के अन्य शिष्य जनक के प्रति उनके प्रेम को देखकर जलते तथा उन पर पक्षपात का आरोप लगाते थे। एक दिन ऋषि ने अपने शिष्यों को यह दिखाना चाहा कि जनक कितने समर्पित आदर्श शिष्य हैं। उन्होंने अपने योग बल से मिथिला की राजधानी में आग लगा दी। पूरा नगर धू-धू कर जलने लगा। सभी शिष्य अपना समान बचाने के ख्याल से इधर-उधर भागने लगे। केवल महाराज जनक नहीं भागे।

उन्होंने अपनी सम्पत्ति और खजाने की चिन्ता छोड़ जनता के जानमाल की सुरक्षा पर ध्यान दिया। उन्होंने मंत्रियों को आदेश दिया कि सब कुछ छोड़कर पहले जनता की सुरक्षा पर ध्यान दें।

ऐसी विपत्ति के समय जनक जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने सोचा कि यदि मिथिला जल जाए, सम्पत्ति और महल नष्ट हो जाए तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा, परन्तु राजा के नाते मेरा सर्वप्रथम कर्त्तव्य जनता की कुशलता तथा सुरक्षा है। अब शिष्यों की समझ में आ गया कि याज्ञवल्क्य क्यों जनक को अधिक चाहते हैं। एक अज्ञानी पुरुष अपने जानमाल की चिन्ता पहले करता है, परन्तु एक उदार विद्वान् दूसरे के जानमाल की सुरक्षा स्वयं से कहीं बढ़कर करता है।

शुकदेव ने ध्यानपूर्वक जनक की कथा सुनी। उन्होंने खड़े होकर पिता से कहा, 'मैं महाराज जनक से मिलने जा रहा हूँ। सांसारिक माया में उलझे रहकर भी इतनी ऊँची विद्वत्ता और समदृष्टि प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यह कहाँ तक सच है, मैं स्वयं अपनी आँखों से देखना चाहूँगा।' ऐसा कहकर वे मिथिला के लिए चल पड़े और सीधे राजा के दरबार में पहुँचे। यह जानते हुए कि शुकदेव उनसे क्यों मिलना चाहते हैं, राजा ने उन्हें तीन दिनों तक प्रतीक्षारत रखा। इन तीन दिनों तक शुकदेव का राजकीय आतिथ्य किया गया, परन्तु इससे वे जरा भी प्रभावित नहीं हुए। इस प्रकार उनकी निष्ठा की परीक्षा कर महाराज जनक ने उन्हें दरबार में आने की अनुमति प्रदान की।

शुकदेव ने राजा को प्रणाम कर कहा, 'राजन्, मेरे पिता ने मुझे विवाह करने तथा परिवार रचने की आज्ञा दी है, परन्तु मैं विवाह नहीं करना चाहता, वह एक बन्धन है। इधर मेरे पिता का दृढ़ विश्वास है कि यदि विवाहित जीवन को सही ढंग एवं उचित दृष्टिकोण से जीया जाये तो वह भी आत्म-साक्षात्कार का माध्यम हो सकता है। यह बात मेरी समझ से बाहर है। इसलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है, क्योंकि आप राज-दरबार और परिवार के बीच रहते हुए भी जीवनमुक्त योगी हैं।'

राजा ने युवक शुकदेव से कहा, 'मनुष्य के लिए इच्छाओं और वासनाओं के जाल से बाहर आना बड़ा कठिन है। इच्छायें कभी मरती नहीं। उन्हें समाप्त करने के लिये यह जरूरी है कि धीरे-धीरे उनकी जड़ पर प्रहार कर उन्हें निर्मूल किया जाये। जिस प्रकार एक चींटी किसी वृक्ष की जड़ को धीरे-धीरे खाती और अंत में उसे भूमिसात् कर देती है, उसी प्रकार मनुष्य को भी धीरे-धीरे अपनी इच्छाओं को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए। पर इच्छाओं का निर्मूलन बड़ा कठिन होता है। यही कारण है कि कमजोर मन और संकल्प-शक्ति वालों के लिये इच्छाओं पर विजय पाना असम्भव होता है। इच्छायें मनुष्य को जरूर प्रभावित करती हैं, चाहे वह बड़े-से-बड़ा त्यागी क्यों न हो। इसलिए पहले यह जरूरी है कि आप अपने मन, शरीर और भावनाओं पर नियंत्रण स्थापित करें। जब आप दैनंदिन गृहस्थ जीवन

में रहते हुए यह प्रयास करेंगे तो आपको अपनी शक्ति और सीमाओं का ज्ञान प्राप्त होगा। आप जान सकेंगे कि आप कितने पानी में हैं। तभी आप स्वयं को अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने योग्य पायेंगे।'

'शरीर, मन और आत्मा के उत्थान के लिये गृहस्थ जीवन को अध्यात्म का प्रथम चरण माना गया है। यदि मनुष्य घर-गृहस्थी के बीच रहते हुए उच्च चेतना का विकास कर सके, जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि को स्वस्थ और सन्तुलित रहते हुए ग्रहण कर सके तो अनंत सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसके लिये उसे जीवन की किसी भी वस्तु को नकारने की थोड़ी-भी आवश्यकता नहीं है। यद्यपि मैं राजकाज में लगा हूँ, तथापि किसी भी प्रकार का दुःख-सुख, हानि-लाभ मुझे कतई प्रभावित नहीं करता।'

'इसका कारण यह है कि मैं अपने समस्त उत्तरदायित्वों का पालन बिना किसी अपेक्षा या आसक्ति के करता हूँ। मैं अपने उत्तरदायित्वों को कर्तव्य समझता हूँ। यदि कोई भी इस दृष्टिकोण से जीवन में व्यवहार करे तो उसे तृप्ति एवं कृतकृत्यता का अनुभव होगा, भले ही वह गृहस्थ हो या संन्यासी। सुख-दुःख, बन्धन अथवा मुक्ति का स्रष्टा मन ही होता है। जीवन में अपनी स्थिति का त्याग मुक्ति नहीं दिलाता। मुक्ति तो तभी मिल सकती है जब एकदम अप्रभावित रहते हुए हम अपने कर्तव्यों का निर्वाह करें।'

महाराज जनक की बात पूरी होने के पूर्व ही शुकदेव ने पूछा, 'राजन्! यह किस प्रकार सम्भव है कि मनुष्य अपने कर्म के फल की इच्छा का त्याग करे और

जीवन के कार्य-कलापों में जुटा रहे? आप स्वयं राजा हैं तथा इन्द्रियों के विषयों से बँधे हैं। आपकी दृष्टि में चोर, चोर है; संत, संत है तथा जिन्हें आप चाहते हैं वे आपको प्रिय हैं। जब आप सफल होते हैं तो प्रसन्नता और जब असफल होते हैं तो दु:ख का अनुभव करते हैं। जब आप अपने वैरी के विषय में सोचते हैं, धन-सम्पत्ति के नुकसान की सूचना पाते हैं अथवा सेना तथा प्रशासन की कमजोरी एवं त्रुटियों की जानकारी प्राप्त करते हैं, तो निश्चय ही आप उद्विग्न होते होंगे। फिर बताइये आप जैसा उच्च पदस्थ व्यक्ति किस प्रकार इन प्रभावों से स्वयं को अछूता रख सकता है?'

जनक ने शुकदेव के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा, 'आपने जो प्रश्न उठाया है वह सही है। मैं धन-सम्पत्ति के विषय में उतना ही चिन्तित रहता हूँ जितना दूसरे लोग। मैं अपने परिवार के सदस्यों से प्रेम करता हूँ, उनकी देखभाल करता हूँ। मैं चोर को चोर की तरह तथा संत को संत की तरह देखता हूँ। उन्हें उचित दंड अथवा सम्मान देता हूँ। पर चूँकि मैं अपने कर्मों के फल की आकांक्षा नहीं रखता, मैं भीतर से उनसे जरा भी प्रभावित नहीं होता। सफलता-असफलता, सुख-दु:ख मुझे विचलित नहीं कर पाते। एक राजा के नाते दक्षतापूर्वक शासन संचालित करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ। राज्य की सीमा और खजाने की वृद्धि, आतताइयों का दमन, न्याय एवं दंड विधान तथा जनता का हित-साधन मेरे कर्तव्य हैं। पिता तथा पति के रूप में परिवार के सदस्यों से प्रेम करना, उनकी जरूरतें पूरी करना और सुरक्षा प्रदान करना मेरे पुनीत दायित्व हैं।'

'परिवार और जनता की सुख-समृद्धि के कार्यों में मैं पूरी तरह जुटा रहता हूँ। इससे मुझे सुख और संतोष मिलता है। परन्तु दूसरों में और मुझमें एक सूक्ष्म अन्तर है—मैं इनमें से किसी के साथ भी लगाव नहीं रखता। यदि सब कुछ नष्ट हो जाए तो भी मैं अप्रभावित रहता हूँ। अपने कर्तव्य-पालन से मुझे संतोष मिलता है। अपने कार्यों के परिणाम से मैं जरा भी विचलित नहीं होता। अपने कर्तव्य-पालन में अपनी समस्त शक्ति और मन लगाने से मुझे सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। यदि आपकी मानसिक बनावट इस प्रकार की न हो और आप सब कुछ त्याग भी दें तो भी आप दु:खी रहेंगे। यह दु:ख अन्तिम श्वास तक आपका पीछा नहीं छोड़ेगा, भले ही आप निर्जन एकान्त में क्यों न रहें।'

जनक के इन वचनों को सुनकर शुकदेव ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उनका तथा अन्य ऋषि-मुनियों का आशीर्वाद लेकर वे अपने पिता के पास लौट आये। उन्होंने पीवरी नामक एक सुन्दर युवती से विवाह किया। इसके साथ ही योगमार्ग का अवलंबन भी किया। परिवार में रहते हुए योगाभ्यास द्वारा उन्होंने चेतना की उच्चतम अवस्था प्राप्त की।

—'कर्म संन्यास' से उद्धृत

योग साधना में स्वाध्याय का महत्त्व

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनेक आध्यात्मिक साधक कुछ ऐसी शंका व्यक्त करते हैं कि 'जब *तत्त्वमसि* (वह तुम हो) ही सर्वोच्च सत्य है, तो फिर आध्यात्मिक प्रवचन एवं साधना से सम्बन्धित अन्तहीन बातों को सुनने या पढ़ने की क्या आवश्यकता है?'

जब आप एक अन्धेरे कमरे में होते हैं, तो अन्धेरे में डूब जाते हैं और बेचैनी से टॉर्च की तलाश करते हैं। आप कई चीजों से टकराते हैं और आपके सिर में भी यहाँ-वहाँ ठोकर लगती है। अन्त में जब टॉर्च मिल जाती है तब अन्धेरे में डूबे रहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कमरे में प्रकाश आ गया है। हाँ, यह खोज बहुत अधिक समय जरूर लेती है। साधना का यह प्राथमिक चरण है, जो बहुत समय लेता है। और जब आप अनुभव करते हैं कि सत्य आपकी पहुँच के अन्दर है, तब आपको सतर्क रहना होगा, जब तक कि वह आपकी चेतना में व्याप्त न हो जाए, जब तक कि आप उसमें ही वास न करने लगें। यह पर्याप्त नहीं कि सत्य का प्रकाश अन्धेरे में एक कोने में जलता रहे, बल्कि आपको उसमें ही वास करना होगा। एक कमरे में जब आप दीपक जलाते हैं तब अन्धेरा भाग जाता है, परन्तु यदि आप दीपक को बाहर रख देते हैं, तो अन्धेरा पुन: वापस आ जाता है। जब तक सूर्य का उदय नहीं हो जाता, कमरे को प्रकाशित रखने के लिए दीपक का लगातार जलना आवश्यक है।

उसी प्रकार आपके हृदय की अन्धेरी गुफा में भी एक दीपक जल रहा है। यह दीपक है सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् प्रभु के बारे में थोड़ी समझ और भक्ति का। इससे आपको इतना प्रकाश मिल जाता है कि जिससे आप जीवन को स्पष्ट रूप से देख सकें और इस सृष्टि की प्रकृति को समझ सकें। परन्तु यदि आप अपना लक्ष्य प्राप्त होने की गलतफहमी के कारण असावधान या साधना के प्रति उदासीन होकर इस प्रकाश को बाहर निकाल देते हैं, तो आप पुन: अन्धेरे से घिर जायेंगे। आपको इस प्रकाश को तब तक प्रज्वलित रखना होगा, जब तक कि आत्म-साक्षात्कार का सूर्य आपके अन्दर उदित न हो जाए। तब सर्वत्र केवल प्रकाश ही प्रकाश होगा। अन्धेरे का सर्वथा नाश हो जाएगा। प्रकाश आपके व्यक्तित्व का अंग बन जाएगा। अन्धकार आपके पास आने का साहस नहीं करेगा। पूर्व में आपने जो साधना प्रयासपूर्वक की थी, वह अब आपका स्वभाव बन जाएगी।

भक्ति साधक के लिए साधना है और सन्त का स्वभाव। सदाचार साधक के लिए साधना है और साधु का स्वभाव। अत: किसी भी क्षण इनका त्याग नहीं होता है। एक साधक भगवान की दिव्य लीलाओं का श्रवण अपनी साधना के आवश्यक

अंग के रूप में करता है, जबकि एक सिद्ध आनन्दपूर्वक उनका श्रवण करता है, क्योंकि वह स्वाभाविक रूप से प्रभु की लीलाओं को सुनना पसन्द करता है।

अत: शास्त्र अध्ययन, ज्ञानी पुरुषों द्वारा बताए गए सत्य वचनों का श्रवण, प्रभु की लीलाओं को सुनना कभी नहीं छोड़ना है, चाहे आप अध्यात्म की किसी भी ऊँचाई पर हों। क्या आप शुकदेव से उच्च स्तर पर हैं, जो एक जन्मजात सन्त और सिद्ध पुरुष थे? क्या आप उन सभी महान् सन्तों से भी बड़े हैं, जो सूतजी द्वारा वर्णित श्रीमद्भागवत को सुनने के लिए नैमिषारण्य में एकत्र हुए थे? इन महान् सन्तों के जीवन से शिक्षा लीजिए और हमेशा आध्यात्मिक ज्ञान के लिए लालायित रहने वाले साधक की तरह रहिए। हमेशा एक शिष्य की भाँति रहिए।

केवल वही व्यक्ति बूढ़ा है, जो यह सोचता है कि मैंने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है और मुझे अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। वह व्यक्ति जीवित रहते हुए भी वस्तुत: मृत है, जिसमें ईश्वर की लीलाओं या आध्यात्मिक ज्ञान को सुनने की उत्कट इच्छा नहीं है। यदि आपमें जवानों जैसा उत्साह एवं सीखने, अभ्यास करने और उस महान् सत्य को जानने की उत्कट इच्छा है, तो आप बुढ़ापे को, यहाँ तक कि मृत्यु को भी टाल सकते हैं। वह महान् सत्य अनन्त काल से लाखों सन्तों, ऋषियों एवं मुनियों द्वारा वन्दित एवं वर्णित होने के बाद भी अक्षय है।

साथ ही यह मत भूलिये कि आप सभी ओर से माया से घिरे हुए हैं। यदि आप एक दिन के लिए भी असावधान हुए, तो बुरी शक्तियों को अवसर मिल जाएगा और वे अपना भयानक खेल खेल जाएँगी। सीढ़ी के सबसे ऊपर के सोपान से गिरने वाली गेंद को धरती पर पहुँचने में एक सेकण्ड से भी कम समय लगता है, जबकि उसे ऊपर पहुँचने में बहुत अधिक समय लगता है। आलस्य के एक क्षण में बहुत नुकसान हो सकता है। जीवन छोटा है, समय भाग रहा है, आप कड़े संघर्ष के बाद प्राप्त आध्यात्मिक उन्नति का एक अंश भी पुन: गँवाने का दु:साहस नहीं कर सकते हैं।

अपने कार्य के साथ-साथ आपको जप, ध्यान, शास्त्र-अध्ययन, सद्विचार और सद्व्यवहार का अभ्यास करना चाहिए। मन रूपी इस बंदर को एक क्षण के लिए भी खाली मत रखिए। इसी कार्य में सत्संग एवं आध्यात्मिक ग्रंथों से आपको महान् सहायता मिलती है। वे आपके मददगार हैं। इन शास्त्रों से आपको कितने ही आध्यात्मिक विचार आसानी से मिल जाते हैं। शास्त्रों के एक-एक शब्द को बहुत ध्यान से पढ़िये। उन वाक्यों को अंकित कर लीजिए, जिनसे आपके जीवन का सीधा सम्बन्ध लगता हो। खाली समय में उन वाक्यों पर मनन कीजिए। इस प्रकार आप पायेंगे कि आप कई बाधाओं एवं खतरों को पार कर गये हैं। क्या इन शास्त्रों को बार-बार पढ़ने से आपका मन रोकता है? आपको सुलाने के लिए यह माया का शक्तिशाली शस्त्र है, सावधान रहिए! क्या आप एक ही प्रकार का भोजन बार-बार नहीं खाते हैं? उसी प्रकार आपको आत्मा एवं ईश्वर से सम्बन्धित आध्यात्मिक

कथनों को बार-बार पढ़ते रहना होगा, जब तक कि वे स्पष्ट रूप से आपके हृदय-पटल पर अंकित न हो जाएँ और आपके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग न बन जाएँ।

तब आपके अन्दर निरोधात्मक संस्कारों का एक कवच निर्मित हो जाएगा। दुहराने से सुसंस्कारों को बल मिलता है, सद्विचार आपके हृदय और मन के अन्तरतम में चले जाते हैं। तब वहाँ स्थित बुरे विचार स्वत: बाहर निकल आते हैं। आपको मालूम भी नहीं पड़ेगा कि आपके अन्दर क्या चमत्कार घटित हो गया। एक ही आध्यात्मिक ग्रंथ को बार-बार पढ़ने का यह परिणाम है। यही कारण है कि हमारे पूर्वज गीता, रामायण, भागवत आदि ग्रंथों को श्रद्धा एवं विश्वास के साथ बार-बार विभिन्न उत्सवों में पढ़ने पर जोर देते थे। इससे आपकी आन्तरिक शक्ति का विकास होगा। आप शक्तिशाली बनेंगे। इस प्रकार जब सम्पूर्ण स्वभाव दिव्य हो जाता है, तब ध्यान के थोड़े से प्रयास से आपको निर्विकल्प समाधि एवं तुरीयावस्था की प्राप्ति हो जाएगी। तब आप पलक झपकते ही ईश्वर का साक्षात्कार कर लेंगे।

हृदय की शुद्धि

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

यह बात हमेशा याद रखो कि भगवान का घर साफ होना चाहिए। अगर तुम बोलते हो कि भगवान मेरे दिल में बसते हैं, तो मैं उससे सहमत हूँ, पर मकान तो गंदा है तुम्हारा। उस गंदे मकान में तुम भगवान को रखोगे तो वे बीमार पड़ जाएँगे! भगवान को अगर अपने हृदय में रखना चाहो, तो अपने दिल की रोज किसी भी तरह से सफाई कर दिया करो। दो बार न सही, कम-से-कम एक बार झाड़ू तो दे ही सकते हो।

सवाल उठता है, दिल की सफाई कहते किसको हैं? यह कैसे पता चलेगा कि हमारा दिल साफ है या नहीं? रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे, 'जहाँ गंदगी होती है, वहाँ मक्खी अपने आप आती है। जहाँ मीठा होता है, वहाँ चीटी अपने आप आती है। जहाँ सम्पत्ति होती है, वहाँ चोर अपने आप आता है। और जहाँ सुन्दर बगीचा, सुन्दर तालाब, सुन्दर फूल, बड़ा अच्छा सुरम्य ललित वातावरण होता है, वहाँ सब लोग अपने आप आते हैं।' बस, हृदय भी ऐसा होना चाहिए।

दिल और दिमाग दो अलग चीजें हैं। दिल कहते हैं भावना को और दिमाग कहते हैं विचार को। विचार दिमाग से पैदा होता है और भावना हृदय से। लेकिन भावना दिमाग को भी प्रभावित करती है। अगर तुम्हारे अन्दर भय, निन्दा, हिंसा,

काम, क्रोध, ईर्ष्या जैसे बुरे विचार आते हैं, तो समझ लो कि जरूर तुम्हारी भावना में गड़बड़ है। अगर तुम्हारा हृदय शुद्ध है, तो तुम्हारे विचार भी वैसे ही शुद्ध और मलिनता से मुक्त होंगे। यही जीवन में पवित्रता की कसौटी है। तुम कदापि नहीं कह सकते कि तुम एक भले और नेक इंसान बन गए हो। विचार नहीं, भावना आदमी को भला बनाती है। तुम कोई अच्छी किताब पढ़कर एक-आध नेक विचार सोच लेते हो, पर वह कोई मायने नहीं रखता। जो भी किताब तुम पढ़ोगे उससे प्रभावित तो होगे ही। बुद्ध, क्राइस्ट, विवेकानन्द और सत्यानन्द तो सही बात कहते ही हैं, उनके विचार नेक हैं ही। लेकिन क्या तुम भी वैसा अनुभव कर सकते हो?

भक्ति का आधार हृदय और भावना होती है। बिना भावना के भक्ति हो ही नहीं सकती। बिना भावना के काम-वासना, क्रोध, भय, ईर्ष्या, सुख-दु:ख या चिन्ता हो ही नहीं सकती। इसका मतलब यह हुआ कि अशुभ रास्ते से जाने वाली भावना को ही शुभ मार्ग की ओर ले जाना है। यह जो वासना की नदी बह रही है, इसको शुभ मार्ग की ओर ले जाओ और शुभ मार्ग पर नियोजित करके क्षीण करो। *शुभाशुभाभ्यां वहन्ति वासना सरित:*—इसी वासना की नदी को हम भावना बोलते हैं। यह हर मनुष्य के अन्दर बह रही है। इसको किसी ने देखा तो नहीं है, पर अनुभव जरूर हुआ है। अब इस नदी को हम लोग नियोजित करते हैं, इसका मार्ग बदलते हैं। इसका मार्ग बदल कर नहर बना देते हैं, खेतों की तरफ ले जाते हैं और बिजली पैदा करने के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं। जो नदी कभी अपने तट को तोड़कर गाँवों, बस्तियों और खेतों को बर्बाद कर रही थी, वही नदी आज निर्माणकारी हो गई है।

उसी प्रकार भावना की जो नदी है, जिससे तुममें क्रोध, काम-वासना या ईर्ष्या पैदा होती है, जिसके कारण तुम किसी को गोली मार देते हो, किसी को मुकदमे में फँसा देते हो, अपने बीवी-बच्चों की पिटाई करते हो, दूसरी औरत के पास जाते हो या दूसरे का धन हड़प लेते हो, वह भावना अलग-अलग नहीं होती। अगर तुम्हारी जेब में बीस रुपये हैं, तो ऐसा नहीं हो सकता कि दस रुपये इस जेब में रहें और दस दूसरी जेब में। भावना में आधे-आधे की बात लागू नहीं होती। अगर मनुष्य को अपने जीवन की दिशा बदलनी है, तो भावना का शत-प्रतिशत मार्ग परिवर्तन जरूरी है। आखिर विवेकानन्दजी क्या थे? ज्यादा-से-ज्यादा कॉलेज से पढ़-लिखकर वकील वगैरह बने होते। पर आज तो वे युग-पुरुष हो गए न, लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के लिए एक प्रेरणास्रोत बन गए हैं।

हम तो अपने बारे में भी बोलते हैं, हमको उसमें शर्म नहीं लगती है। हम तो एक साधारण घर के व्यक्ति हैं। हमारे जैसे लोग क्या बनते हैं? मैट्रिक पास कर लिया, कुछ यहाँ, कुछ वहाँ बदमाशी करते हैं। कभी सिनेमा में जाते हैं, कभी बोतल की तरफ जाते हैं। यही हाल हमारा भी होता। परन्तु हमारे गुरु ने हमारी भावना की पूरी दिशा ही बदल दी। जहाँ आज हिन्दुस्तान में चार ईसाई बनते हैं तो

हंगामा हो जाता है, वहाँ विदेश में हम तो दिन-रात यही काम करते थे, लेकिन कहीं कोई बोलता ही नहीं था। किसी की हिम्मत नहीं कि कुछ बोले। हम तो नाम बदल देते, कपड़ा बदल देते, मंत्र दे देते। और मजे की बात यह कि जब हम वहाँ जाते, किसी कंगाल को चेला नहीं बनाते। वैसे वहाँ कंगाल हैं भी नहीं। कोई इन्जीनियर है, तो कोई डॉक्टर, तो कोई वैज्ञानिक। यानि कि वहाँ गरीब-से-गरीब आदमी के पास भी इतना पैसा है कि वह हिन्दुस्तान घूम कर आ सकता है। लेकिन यहाँ कैसे लोगों का धर्म परिवर्तन होता है? फोकट राम, लफंगा राम, निरक्षर राम और कंगाली राम जैसों का वे लोग धर्म परिवर्तन करते हैं।

बुरे विचार तो सबमें होते हैं। समझदार व्यक्ति उन्हें सहेज कर नहीं रखते, कचरे की टोकरी में डाल देते हैं। ज्ञानी के मन में भी बुरे विचार आते हैं, लेकिन वह उनको सेप्टिक टैंक में भेज देता है। जबकि अज्ञानी तो रसोईघर में ही टट्टी करके आ जाता है और वह वहीं पर पड़ी रहती है। उसको सफाई का कोई अंदाज ही नहीं है। सोने की जगह में बैठकर खाना खाओगे तो चूहा नहीं आएगा क्या? लोगों को मर्यादा का ज्ञान नहीं है।

सत्त्व गुण, रजो गुण और तमो गुण—सारी प्रकृति इन तीन गुणों से नियंत्रित है। जो त्रिगुणातीत हो गया, वह तो शून्य के पार तुरीयातीत अवस्था में चला गया—

सन्तो, अब चौथा पद पाया॥
नाभि-कमल से सुरता चाली, सुलटा दम उलटाया।
त्रिकुटि महल की खबर पड़ी जब, आसन अधर जमाया॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती जानी, तुरिया तार मिलाया।
अन्तर अनुभव ताली लागी, शून्य मण्डल में समाया॥
चाली सुरता चढ़ी गगन पर, अनहद नाद बजाया।

वह अवस्था बहुत ऊँची है। तीन गुण तो सब में रहते हैं और उन तीन गुणों को समन्वित करना धर्म के द्वारा सम्भव है। धर्म सबसे बड़ी चीज है। धर्म व्यवहार को, चेष्टा को, व्यावहारिक जीवन को कहते हैं। धर्म पति और पत्नी के बीच, मित्र और शत्रु के बीच, समाज के व्यक्तियों के बीच परस्पर व्यवहार का नाम है। घण्टी, आरती वगैरह धर्म में नहीं आते हैं। ये भक्ति में आते हैं। यह कर्म-काण्ड है, लेकिन धर्म एकदम अलग चीज है। धर्म जीवन से शुरू होता है, जबकि भक्ति में जीवन की कोई जरूरत नहीं है। भक्ति भावना से पैदा होती है। चाहे काम वासना हो या भक्ति भावना हो, यह अन्दर से पैदा होती है।

जब मनुष्य के अन्दर तीनों गुण विद्यमान हैं, तब वह इन तीन गुणों को किस तरह से समन्वित करता है? उदाहरण के तौर पर तुम्हारे घर में भी तो ये तीनों गुण हैं। घर में सुन्दर कमरा, सुन्दर कपड़े, सब चीजें सुन्दर हैं। साथ-ही-साथ भोग की चीजें भी हैं और गन्दी चीजें भी हैं। इस तरह तुम्हारे घर में तीनों चीजें हुईं—शुद्ध वस्तु, भोग की वस्तु और गन्दी वस्तु। कैसे सम्हालते हो? आखिर अपने घर में भी सामान खोलते हो तो प्लास्टिक निकलता है, भोजन बनाते हो तो जूठन बचती है, सब्जी काटते हो तो छिलके निकलते हैं, जूते अन्दर लाते हो तो गन्दगी होती है। कैसे व्यवस्था करते हो? कपड़ा, चादर, कमरा, टॉयलेट, मकड़ी के जाले, सब साफ करने पड़ते हैं। ठीक उसी तरह से अपने हृदय की व्यवस्था करनी पड़ती है।

जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाएगा, तब भगवान वहाँ आकर बैठेंगे और उसके बाद तुम देखोगे कि जीवन की पूरी की पूरी नियति भगवान के हाथ में चली गयी है। हमारे यहाँ बचपन में कहा करते थे—दीन बंधु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ। वही अवस्था आनी चाहिए।

जब अपनी डोरी पूरी उनके हाथ में दे दी, तब वे चाहे तुमको कसाई घर ले जाएँ या मंदिर में तुमको देवता बना दें, तुमको क्या? भगवान को अगर अपना पूरा-का-पूरा जीवन दे दोगे, तो दुनिया में कुछ भी नामुमकिन नहीं। बस, भगवान के सामने शर्त नहीं रखना। वह तो ज्ञानी है, तुम्हारे दिमाग, हाथ-पैर और प्राणों को संचालित करता है। जब वही तुम्हारे जन्म-मृत्यु का फैसला करता है, तब उसको तुम क्या सिखाने चले हो? भगवान को बोलने की क्या जरूरत कि मेरा दु:ख दूर करो। उसी भगवान ने तो सारा सुख-दु:ख, धन-गरीबी, रोग-शोक दिया है। वह तो सब जानता है। भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है। जब तुम मानते हो कि परमात्मा में ये तीन गुण हैं, तब उनको सुझाव देने की हिमाकत कैसे करते हो? बल्कि वे तुमको सुझाव देंगे कि बेटा, एक अच्छे संन्यासी बनो या एक अच्छे पति बनो।

—'रिखियापीठ सत्संग, भाग 1' से उद्धृत

योग एवं शिक्षा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

इस बात पर बहुत विचार किया गया है कि शिक्षा में योग का क्या योगदान हो सकता है। सामान्यत: जब हम शिक्षा की प्रक्रिया को योग से समुन्नत करने की बात करते हैं, तब हम कुछ सीमित पक्षों की ही बात करते हैं, जैसे स्मरण शक्ति या बुद्धि को बढ़ाना, अथवा कक्षा में तनाव को नियंत्रित करना। पर वास्तव में शिक्षा की यौगिक अवधारणा थोड़ी अलग और विस्तृत है।

हमलोगों के सामने आज शिक्षा के दो विकल्प हैं। एक किताबों और मेज-कुर्सियों से जुड़ा है और दूसरा व्यक्ति से जुड़ा है। किताब-मेज-कुर्सियों से सम्बन्धित शिक्षा सीमित है, जिसमें हम उस व्यक्ति को भूल गये हैं जिसे पढ़ना है। वास्तव में यदि हम आज कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों और शिक्षा पद्धति को देखते हैं तो पाते हैं कि वह व्यवसायोन्मुखी शिक्षा है। व्यवसायोन्मुखी शिक्षा समाज में व्यवसाय प्राप्त करना सिखाती है। स्कूल से लेकर कॉलेज तक दिये जाने वाले प्रशिक्षण में केवल नौकरी, व्यवसाय और जीवन में एक स्थान प्राप्त करने पर ही बल दिया जाता है।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या मनुष्य को यही शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए, और मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि नहीं! इस प्रकार की शिक्षा भले ही कुछ हद तक उपयोगी है, लेकिन वह मनुष्य के लिए पूरी तरह उपयुक्त नहीं है। इसलिए सबसे पहले हमें यह विचार करना चाहिए कि हमें स्वयं को किस तरह शिक्षित करना चाहिए, और दूसरी बात यह है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या हो।

शिक्षा की व्यवसायोन्मुखी पद्धति को आत्म-शिक्षा में परिवर्तित करने की आवश्यकता है, और आत्म-शिक्षा के साथ ही योग आरम्भ होता है जिसका उद्देश्य है मानसिक स्पष्टता प्राप्त करना, मन को स्थिर एवं एकाग्र करना तथा मानव व्यक्तित्व की क्षमताओं को सही दिशा प्रदान करना। मैं स्कूली शिक्षा के विषय में कहने नहीं जा रहा हूँ, क्योंकि मैं इसे स्वीकार नहीं करता हूँ। मैं ईश्वर एवं गुरु के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे पढ़ने के लिए स्कूल जैसे वातावरण में नहीं जाने दिया, क्योंकि जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो लगता है कि यदि वैसा हुआ होता तो बहुत बुरा होता।

शिक्षा के सोपान

हमें शिक्षा की अवधारणा को कक्षा की शिक्षा से व्यक्तिगत शिक्षा में रूपान्तरित करना है। शिक्षा का पहला चरण है प्रत्येक व्यक्ति में 'स्वान' (SWAN)

सिद्धान्त की पहचान करना। व्यक्ति की क्षमताओं, दुर्बलताओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पहचानते हुए उनके स्वभाव के इन विभिन्न तत्त्वों को विकसित करना है, सशक्त करना है और उन्हें समझना है।

शिक्षा के दूसरे चरण में हम मानसिक क्षमताओं में वृद्धि करने के लिए सजगता का बहिर्मुखी विस्तार करते हैं। धारणा के अभ्यास के पूर्व मन का विस्तार करना है। मन की क्षमताओं को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने के लिए आपको मन की क्षमताओं का विस्तार करने योग्य होना आवश्यक है ताकि आप उन्हें जान सकें। महर्षि पतंजलि की राज योग पद्धति इसके लिए उपयुक्त है। हम प्रत्याहार में इन्द्रियों को अपने अन्दर समेटने की बात कहते हैं, लेकिन वह प्रत्याहार का अंतिम चरण है। प्रत्याहार का पहला चरण है बाह्य जगत् में इन्द्रियों का विस्तार। हम मन की एकाग्रता को धारणा कहते हैं, लेकिन वह धारणा का अंतिम चरण है। धारणा का पहला चरण है मानसिक सजगता का बाह्य वातावरण में विस्तार। हम आन्तरिक सामंजस्य की अनुभूति को ध्यान कहते हैं, लेकिन यह ध्यान का अंतिम चरण है। पहला चरण है बाह्य स्तर पर सामंजस्य का अनुभव करना। यदि आप बाह्य स्तर पर सामंजस्य का अनुभव नहीं कर सकते तो अन्दर इसका अनुभव कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हमें प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अंतिम चरण को नहीं देखना है, बल्कि प्रथम चरणों को देखना है—मन और सजगता का विस्तार, बाह्य जगत् में सम्मिलित होना, रचनात्मक होना, खुला होना, अपनी पारस्परिक क्रियाओं को

समझना, यह जानना कि अपने परिवार, समाज और इस विश्व में हमारी स्थिति कैसी और कहाँ है। यौगिक शिक्षा का यह दूसरा चरण है।

आप जो हैं, वही रहें

यौगिक शिक्षा का तीसरा चरण है, व्यापक अर्थ में ध्यान। मैं पातंजल ध्यान की बात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि उस प्रक्रिया का उल्लेख कर रहा हूँ जिसके द्वारा आप अपने इस अस्तित्व को इसी रूप में स्वीकार कर रहे हैं। महान् सूफ़ी संत मुल्ला नसरुद्दीन के विषय में एक कथा है। एक दिन वे एक मेले में गये। वहाँ तीरंदाज़ी की प्रतिस्पर्धा होने वाली थी। प्रत्येक व्यक्ति को सौ गज की दूरी पर स्थित लक्ष्य को बेधने के लिए तीन तीर दिये गये थे। मुल्ला नसरुद्दीन ने अचानक उस प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का निश्चय किया। तुरंत यह बात फैल गयी कि महान् सूफ़ी प्रतिस्पर्धा में भाग लेने जा रहे हैं। सैकड़ों लोग वहाँ जमा हो गये।

मुल्ला नसरुद्दीन ने धनुष उठाया, पहला तीर उठाकर वायु की दिशा को देखा, धनुष की डोरी को देखा, अपनी टोपी को नीचे खींचा, सावधानी से लक्ष्य को साधा और तीर छोड़ा। दुर्भाग्यवश तीर लक्ष्य से बहुत आगे चला गया। भीड़ में हँसी-ठिठोली होने लगी, 'महान् सूफ़ी संत लक्ष्य चूक गये।' मुल्ला नसरुद्दीन का एक अत्यन्त बुद्धिमान् शिष्य था। उस शिष्य ने सोचा, 'मेरे गुरु लक्ष्य को चूक गये, अवश्य कोई कारण होगा।' इसलिए उसने कहा, 'हे गुरुदेव, क्या आप बता सकते हैं कि आपका तीर लक्ष्य से दूर क्यों चला गया?' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'हाँ, मैं अवश्य बता सकता हूँ। जिस व्यक्ति ने तीर छोड़ा, उसमें अतिविश्वास था और अतिविश्वास से भरा हुआ व्यक्ति अनेक बार लक्ष्य चूक जाता है।'

दूसरा तीर छोड़ने की बारी थी। मुल्ला नसरुद्दीन ने लक्ष्य साधा, लेकिन इस बार वे घबराये हुए थे। उन्होंने तीर को छोड़ा तो वह कुछ दूर जाकर नीचे गिर गया। बुद्धिमान् शिष्य ने पुन: पूछा, 'हे गुरुदेव, क्या आप बता सकते हैं कि इस बार वह कौन व्यक्ति था जिसने यह तीर छोड़ा?' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'यह ऐसा विश्वासरहित व्यक्ति था जो सोचता है कि मैं कभी अपना लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सकता।'

अंत में तीसरा तीर चलाने की बारी थी। मुल्ला नसरुद्दीन ने तीर छोड़ा और वह सीधे लक्ष्य को बेध गया। मुल्ला नसरुद्दीन ने गर्व के साथ अपना पुरस्कार उठाया और चलने लगे। शिष्य ने फिर से पूछा, 'गुरुदेव, जाने से पहले कृपया यह बतायें कि तीसरा तीर मारने वाला व्यक्ति कौन था?' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'वह मैं था।'

आप जो हैं, यदि वही रह सकते हैं, यदि आप अपनी कमियों, प्रतिभाओं और अपने स्वभाव को स्वीकार करना सीख सकते हैं, यदि आप अपने चेहरे पर मुखौटे डालने से, जो हम जीवन में अक्सर करते हैं, स्वयं को रोक सकते हैं, तो आप ध्यान की ओर उन्मुख हैं। एक बार जब आप ध्यान की ऐसी प्रक्रिया आरम्भ कर देते हैं तभी शिक्षा आरम्भ होती है।

शिक्षा की यौगिक अवधारणा

शिक्षा ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम जीवन में समुचित ढंग से स्वयं को अभिव्यक्त करना सीखते हैं। हम चाहे इसे व्यवहार का विज्ञान या अपने जीवन में सृजनात्मक बनने का विज्ञान या जीवन जीने की कला सीखना कहें, पर यही शिक्षा की यौगिक अवधारणा है।

शिक्षा की आधुनिक अवधारणा मात्र हमारी बौद्धिक क्षमता में वृद्धि करती है। दोनों अवधारणाओं की जरा तुलना करें—बौद्धिक क्षमता में वृद्धि जो व्यवसायोन्मुखी शिक्षा है, और सीखने की प्रक्रिया में वृद्धि और सृजनात्मक एवं रचनात्मक ढंग से जीना, जो यौगिक शिक्षा या आत्मोन्मुखी शिक्षा है। जब मैं 'आत्मोन्मुखी' शब्द का प्रयोग करता हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम स्वयं को अपने आप में ही केन्द्रित रखें, बल्कि यह सम्पूर्ण रूप में स्वयं के प्रति सजग होना है। सीखने की वह प्रक्रिया जो जीवन से, हमारे व्यवहार, अभिवृत्ति और विचार प्रक्रिया से जुड़ी हुई है, आठ वर्ष की अवस्था से पूर्व ही पूरी हो जाती है। इसलिए हमें सोचना है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली में ऐसा क्या होना चाहिए जो जीवन के विकासशील वर्षों में हमारी सीखने की प्रक्रिया को उत्प्रेरित करे।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम जीवन के सत्यों को इतिहास, भूगोल, रसायनशास्त्र और गणित आदि की पुस्तकों के माध्यम से नहीं सीख पाते हैं। हम

इन चीजों को अपने परिवार, समाज और संस्कृति के साथ अपनी परस्पर क्रियाओं को देख-समझकर, अनुभव द्वारा सीखते हैं। इसलिए मैं फिर से यह दोहरा रहा हूँ कि वास्तविक शिक्षा जीवन के सात-आठ वर्ष की अवस्था के अन्दर ही होती है। शिक्षा, जिसका सम्बन्ध जीवन से होता है, वह इन्हीं वर्षों में होती है। इसी संदर्भ में माता-पिता और योग की भूमिका होती है। उसके बाद हम स्कूली शिक्षा ग्रहण करते हैं।

योग के अभ्यास

हमें योग की भूमिका को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। उदाहरण के लिए, मानस दर्शन की प्रक्रिया को लें। योग में मानस दर्शन की प्रक्रिया प्रत्याहार का एक पक्ष है। प्रत्याहार एक अत्यंत रोचक विषय है, क्योंकि इस अभ्यास में आप अपनी सजगता का बाह्य जगत् में विस्तार करना सीखते हैं। दृष्टि, स्वाद, गंध, ध्वनि, स्पर्श—ज्ञानेन्द्रियों की इन क्षमताओं का उनकी अधिकतम सीमा तक विकास करना है। जब आप अपनी इन्द्रियों की सीमाओं को जान जाते हैं तब आप न केवल अपनी शारीरिक इन्द्रियों को, बल्कि मानसिक इन्द्रियों को भी उनके विषयों से धीरे-धीरे हटाने लगते हैं। आपको अपनी चित्तमूलक स्मृतियों में वापस लौटना है, वहाँ गहराई में दबे संस्कारों को बाहर लाना है और तब आप विश्रान्ति की अवस्था का अनुभव करेंगे। इसे प्राप्त करने के लिए योग में वयस्कों के साथ-साथ बच्चों के लिए भी विभिन्न तकनीक बताये गये हैं। ये अभ्यास हैं योग निद्रा, अन्तर्मौन एवं अजपा जप। ये वयस्कों के लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि इससे उन्हें विश्रान्ति प्राप्त होती है, और बच्चों के लिए भी ये महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे इनके द्वारा अपने व्यक्तित्व तथा स्वभाव से परिचित होते हैं।

अन्तर्मौन में अपने विचारों का साक्षी बनना है और उनका अवलोकन करना है, लेकिन इससे पहले कि आप मन के साक्षी बनें, उसका अवलोकन करें और वहाँ हो रहे कोलाहल को शान्त करें, आपको विचारों का निर्माण करना होगा।

अजपा जप मंत्र के साथ श्वास पर सजगता का अभ्यास है। शायद यह अभ्यास वयस्कों और बच्चों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन वैदिक परम्परा में आठ वर्ष की अवस्था में लड़के-लड़कियों को तीन चीजें सिखायी जाती थीं—थाइमस ग्रंथी के विकास एवं उसकी गतिविधि को बनाये रखने के लिए सूर्य नमस्कार का अभ्यास,

पीनियल ग्रंथी को क्रियाशील रखने के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम और एकाग्रता में वृद्धि, स्मरणशक्ति और मानसिक शान्ति के लिए गायत्री मंत्र का अभ्यास।

तनाव और इसके संकेत

एक बार मैं दिल्ली में एक परिवार के साथ ठहरा हुआ था। वहाँ मैंने एक सात-आठ साल के बच्चे को अपनी माँ से कहते सुना, 'माँ, मैं तनाव में हूँ।' मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने छोटे बच्चे के शब्दकोश में तनाव जैसा शब्द सम्मिलित था। मैं जब तक अठारह वर्ष का नहीं हो गया तब तक मुझे मालूम ही नहीं था कि तनाव क्या है। तेईस की उम्र तक मैं नहीं जानता था कि सिरदर्द क्या है। इससे क्या संकेत मिलता है? कुछ ऐसा है जो सही नहीं है। बच्चा अपने मन को, अपने विचारों को और सीखने की प्रक्रिया को सही दिशा देने के लिए प्रशिक्षित नहीं था।

मेरा मानना है कि सूर्य नमस्कार, नाड़ीशोधन और अजपा जप के अभ्यासों को करने पर आंतरिक चेतना उद्दीप्त होती है और बाह्य उत्तेजनाएँ कम होती हैं। एक बार जब हममें अपनी शारीरिक, इन्द्रिय सम्बन्धी और मानसिक उत्तेजनाओं को कम करने की क्षमता आ जाती है तब चेतना का विकास प्रारम्भ होता है और चेतना की शक्ति का अनुभव होने लगता है। मैं शिक्षा की चर्चा बुद्धि बढ़ाने वाली प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि जीवन को सही ढंग से जीने और व्यवहार में उतारने की प्रक्रिया के रूप में कर रहा हूँ। स्वाभाविक रूप से चंचल रहने वाले मन को एकाग्र करने का प्रशिक्षण सभी को प्राप्त होना चाहिए ताकि वे अपने शरीर, भावना और बुद्धि के विभिन्न आयामों के सम्पर्क में आ सकें।

माता-पिता का दायित्व

प्राय: हम बच्चों को अपने भावों को व्यक्त करने से रोकते हैं, जिससे उनमें भावनात्मक अवरोध उत्पन्न हो जाता है। यहीं पर धारणा की आवश्यकता होती है। यद्यपि धारणा का अर्थ होता है मन को केन्द्रित करना, लेकिन इसका अर्थ भावनात्मक पक्ष को संतुलित करना और उसमें सामंजस्य स्थापित करना भी है।

धारणा बच्चों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभ्यास है। खेलों के साथ, मानस दर्शन के साथ, रचनात्मक दृष्टिकोण के साथ वे अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था में घट रही घटनाओं और अनुभवों को समझना सीख लेते हैं।

अपने बच्चे को समुचित भरण-पोषण और प्रोत्साहन के साथ जीवन में विकास के अवसर प्रदान करें। माता-पिता को बच्चे का अवलंब बनना चाहिए। माता-पिता द्वारा बच्चों को अपनी रचनात्मकता को अभिव्यक्त करने के अवसर दिये जाने चाहिए। यदि हम ऐसा कर पायेंगे तो हम इस संसार में एक नया, उज्ज्वल सूर्योदय देख पायेंगे।

–'बच्चों के लिए योग शिक्षा, भाग 2' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

स्वामीजी, क्या ईश्वर की भी भावनाएँ होती हैं?

ईश्वर की तुम्हारी यह अवधारणा ईसाई मत पर आधारित है। पर दर्शन की दृष्टि से देखें तो ईश्वर हर घटना, हर चीज का द्रष्टा मात्र है। वह करता कुछ नहीं है। प्रकृति ही सब कुछ करती है। अब रही बात भावनाओं की। भावनाएँ मनुष्य की होती हैं। मनुष्य प्रकृति के नियमों के अंतर्गत रहता है, इसलिये वह भावनाओं को अनुभव और अभिव्यक्त करता है। अगर तुम प्रकृति के परे चले जाओगे तो तुम भावनाओं के ऊपर उठ जाओगे।

भावना आखिर क्या है? अच्छा-बुरा, प्रेम-घृणा, सुख-दु:ख, भय-हर्ष, ये सब भावनाएँ हैं। भावना एक तरह की प्रतिक्रिया है। अगर कुछ अच्छा होता है तो तुम्हें अच्छा लगता है, अगर बुरा होता है तो बुरा लगता है। अगर सुखद घटना होती है तो तुम सुखी होते हो, अगर दुर्घटना होती है तो तुम दु:खी हो जाते हो। अलग-अलग परिस्थितियों की वजह से तुम अलग-अलग भावनाएँ महसूस करते हो। अब यह भावना महसूस कौन करता है? मैं अनुभव करता हूँ। मैं कौन हूँ? मन। मेरे मन को ही अच्छा या बुरा महसूस होता है। अगर मैं पागल हो जाऊँ या मुझे बेहोशी की दवा दे दी जाए या मैं मंदमति हूँ तो मुझे कुछ भी महसूस नहीं होगा। भावना मनुष्य के मानसिक स्तर पर निर्भर करती है। भावनाओं की अनेक श्रेणियाँ होती हैं। और भी कई चीजें होती हैं समाज और संस्कृति के मुताबिक। भारतीय लोग खुशी-खुशी गोमूत्र पान करते हैं, लेकिन यूरोपवासी उसे पसन्द नहीं करेंगे। उनकी भावनाएँ हमसे भिन्न हैं। वे भरपूर मदिरा-पान करेंगे और खुश होंगे, पर भारतवासी कहेंगे यह बुरा है। इस तरह भावना आपकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप होगी। ईश्वर से उसका कोई वास्ता नहीं है।

क्या भगवान को भी अकेलापन महसूस होता है?

हाँ, क्यों नहीं! उपनिषदों में कहा गया है, भगवान एक है और उसके समान दूसरा कोई नहीं है। वह अमर है और बाकी सब की मृत्यु होती है। वह शुद्ध है, अन्य सब कुछ अशुद्ध है। वह निराकार है, शेष जगत् का रूप और आकार है। उसका कोई नाम नहीं, जबकि बाकी सब चीजों का कोई-न-कोई नाम है। उसके जैसा दूसरा कोई नहीं है, इसलिए वह अकेला है। अगर तुम भी हम सब लोगों से भिन्न होगे तो अकेला महसूस करोगे।

लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। ईश्वर में एक से अनेक होने का संकल्प है। किन्तु वैसा होगा नहीं, वह मात्र संकल्प है। संकल्प को साकार करने

के लिए वह प्रकृति के साथ, माया के साथ संयुक्त होता है। फिर वह ईसाइयों का गॉड, मुसलमानों का अल्लाह और हिन्दुओं का भगवान हो जाता है, जिसकी वे गिरजाघर, मस्जिद और मन्दिर में पूजा-आराधना करते हैं। वह ईश्वर जिसका चिन्तन किया जा सके, जिसका अनुभव किया जा सके, जिसकी हम आराधना कर सकें, वह ईश्वर जो हमें प्यार करता है, जिसकी भावनाएँ हैं, तुम जिस ईश्वर की बात कर रहे थे, यही वह ईश्वर है। किन्तु जब ईश्वर का प्रकृति से संयोग होता है, तब उसमें प्रकृति के गुण और धर्म आ जाते हैं। जब वह अवतार लेता है तो वह प्रकृति के गुणों के अधीन हो जाता है। वह माँ के गर्भ से जन्म लेता है, बच्चों जैसी लीला करता है। उसे भूख लगती है, उसे नींद आती है। वह जवान होता है, उसका विवाह होता है, बच्चे होते हैं। वह प्रेम भी करता है और क्रोध भी। अंत में

उसकी मृत्यु भी होती है। परन्तु फिर भी वह भगवान है। जब वह प्रकृति के संसर्ग में आता है तो उसे प्रकृति के समस्त धर्मों को स्वीकार करना पड़ता है।

उदाहरण के लिए, बिजली एक प्रकार की ऊर्जा है। जब वह बल्ब में प्रवेश करती है तो उसे बल्ब के समस्त गुण-धर्मों को धारण करना पड़ता है। जब बिजली फ्रिज में प्रविष्ट होती है तो उसे फ्रिज के सभी धर्मों का पालन करना पड़ता है। जब वह हीटर में आती है तो उसे हीटर के धर्मों का अनुसरण करना पड़ता है। किन्तु शक्ति स्वयं निर्गुण है। वह न आग है न ही पानी है, बिल्कुल तटस्थ है दोनों से। वह विशुद्ध ऊर्जा है। जब वह बल्ब, फ्रिज या हीटर के सम्पर्क में आती है तो उसके समस्त गुणों को धारण कर लेती है।

इसी तरह जब भगवान प्रकृति के सम्पर्क में आते हैं तो उनके आचरण को लीला कहा जाता है। बिल्कुल अभिनेता की तरह। कोई मराठी अभिनेता बंगाली नाटक में भूमिका करता है तो वह बंगाली व्यक्ति जैसा आचरण करता है, पर वह बंगाली नहीं है। जब वह बंगाली की भूमिका में आता है तो वह बंगाली धर्मों का पालन करता है, बंगाली की बोली, वेश-भूषा, व्यवहार-शैली, सब कुछ। यही दशा भगवान की है। उस परम सत्ता को तुम पिता कहो, कोई बात नहीं, माता कहो, कोई परवाह नहीं, भाई कहो, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे लिए वह पिता है, मेरे लिए वह माँ है। वह तुम्हारे धर्म के अधीन होकर तुम्हारा बाप बन जाता है, मेरे धर्म के अधीन होकर वह मेरी माँ बन जाता है, लेकिन भगवान सबके परे है। अब ऐसे भगवान के बारे में चर्चा करने का क्या फायदा जिसके विषय में हम जान ही नहीं सकते?

हमलोग उस भगवान के विषय में चर्चा करते हैं जो हमारे बहुत समीप है। तुम्हारे जैसे लोग, जो भगवान के भक्त हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई होती है निर्गुण ईश्वर का चिंतन करने में। वे प्रार्थना करते हैं, 'हे भगवान, तुम कौन हो? मैं तुम्हें कैसे अनुभव करूँ, मैं कैसे तुम्हारा गुणगान करूँ, तुम हो कहाँ?' तब भगवान के मन में संकल्प आता है, 'मुझे जन्म लेना चाहिए।' वह सिर्फ हमारे लिए जन्म लेता है। जो भगवान अज्ञेय है, उसके बारे में क्या बोलोगे? इसलिए तुम्हारी प्रार्थना पर, मेरी प्रार्थना पर, सबकी प्रार्थना पर भगवान ने कहा, 'मुझे जन्म लेना है।' इस प्रकार वे कभी इज़रायल में पैदा हुए, तो कभी भारत में। भारत में वे कई बार पैदा हुए क्योंकि यहाँ के लोग बड़े अच्छे हैं। कभी वे क्षत्रिय योद्धा के रूप में पैदा हुए, कभी बांसुरी बजानेवाले, नृत्य करने वाले गोपाल के रूप में पैदा हुए, कभी बुद्ध जैसे उपदेशक के रूप में पैदा हुए। जब वे मानव-स्वरूप में अवतरित हुए तुमने उन्हें पसन्द किया, उनके लिए प्रार्थनाएँ-कविताएँ लिखीं, गीत गाये, उनकी तस्वीरें बनाईं, उनकी दया, करुणा, सौन्दर्य और शौर्य का गुणगान किया। वे हमारे लिए ही पैदा हुए थे, ताकि हम उनके समीप आ सकें, उनकी भक्ति पा सकें।

मेरी बात समझ में आ रही है न? भगवान किसी को मारने के लिए पैदा नहीं होते, बल्कि अपने भक्तों के हित के लिए उत्पन्न होते हैं। हर भक्त अपने भगवान को देखना चाहता है, उनको अनुभव करना चाहता है, पर उसे कठिनाई होती है। इसलिए उसे थोड़ी सहायता प्रदान करनी पड़ती है। कोई बच्चा नदी में डूबने लगे तो तुम क्या करोगे? नदी में कूदकर उसे बचाओगे न? इसी तरह ईश्वर में कोई भावना नहीं है, लेकिन जब वह भक्तों की सहायता के लिए ईसा मसीह या राम या कृष्ण या बुद्ध के रूप में अवतरित होता है, तो उसके भीतर भावना पैदा होती है।

आपने एक बार बताया था कि अखाड़ों का निर्माण मुगलों के समय हुआ था, विरोध के लिए। उस समय तो वह काम था उनका, लेकिन अभी जो अखाड़े हैं उनका क्या कार्यक्रम है?

अखाड़े संन्यासियों के पुराने गढ़ रहे हैं। प्राचीन काल से देखा गया कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो वैवाहिक बन्धन में नहीं पड़ना चाहते। यदि कभी समाज के दबाव में आकर शादी कर भी लेते हैं, तो उससे बाहर भी निकल आते हैं। हर व्यक्ति विवाह के योग्य नहीं होता या विवाह करना नहीं चाहता। वास्तव में विवाह कोई लोकतान्त्रिक पद्धति है भी नहीं। यह व्यक्ति की पसन्द-नापसन्द पर आधारित नहीं है। यह समाज की पसन्द है। समाज ने एक परम्परा कायम कर दी है जिसमें तुम्हें मजबूरन शादी करनी ही है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। यदि लोगों को छूट दी जाए तो शायद दुनिया की आधी आबादी शादी करे ही नहीं।

हमारे पूर्वजों ने इस बात को समझा और एक ऐसी व्यवस्था बनाई कि पचीस वर्ष के पूर्व विवाह नहीं होना चाहिए। तब तक व्यक्ति परिपक्व नहीं होता, निर्णय लेने में सक्षम नहीं होता। जैसे चुनाव में हर कोई मतदान नहीं कर सकता, वैसे विवाह भी एक तरह का मताधिकार है। पचीस वर्ष के बाद व्यक्ति विवाह करने या न करने का मत बना सकता है। वह अपनी भावनात्मक वृत्तियों को समझ सकता है, अपनी यौन आवश्यकताओं को समझ सकता है, अपनी असुरक्षा की गहराई का अनुमान लगा सकता है और तब वह निर्णय ले सकता है कि उसे विवाह करना चाहिए या नहीं।

जो निर्णय करता है कि शादी करनी है, वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और जो यह निर्णय करता है कि उसे विवाह-बन्धन में नहीं फंसना है, वह अखाड़े में चला जाता है। अखाड़ा एक संस्था होती है, वहाँ आचार्य होते हैं। भिन्न-भिन्न लोगों के लिए हमारे यहाँ विविध प्रकार के अखाड़े हैं। बुद्धिजीवियों और शिक्षित लोगों के लिए निरंजनी अखाड़ा है। वकील, प्रोफेसर, लेक्चरर जैसे लोग इस अखाड़ा में चले जाते हैं। जो मजबूत किस्म के हैं, चिलम चढ़ाने और लड़ने-भिड़नेवाले है, वे जूना अखाड़ा जाते हैं और नागा बाबा बन जाते हैं। फिर निर्मली अखाड़ा है जहाँ अन्य परम्पराओं, जैसे सिख आदि से लोग आते हैं। इस प्रकार

कई अखाड़े हैं और वे पुराने जमाने से चले आ रहे हैं। उनमें समय-समय पर बदलाव भी होता रहा है।

अयोध्या के राम मन्दिर की देखभाल के लिए उन दिनों अखाड़े बने थे। आज जिस राम जन्मभूमि पर विवाद चल रहा है, उसका नियन्त्रण भी अखाड़े के अधीन था। अकबर के शासन-काल में वहाँ अखाड़े थे। उस समय उनकी कोई राजनैतिक भूमिका नहीं थी। मुगलों के आने से बहुत पहले, सम्राट् अशोक के बाद से ही भारत पर निरन्तर आक्रमण हुआ करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल बड़ा शक्तिशाली था। उसने सभी यूनानियों को भारत से खदेड़ दिया था। लेकिन सम्राट् अशोक के बाद देश बड़ा कमजोर हो गया, क्योंकि अशोक ने एकतरफा निरस्त्रीकरण घोषित कर दिया। उसने सैन्यबल कम कर दिया, अस्त्र-शस्त्र का निर्माण बन्द कर दिया। बाजार में जहर की बिक्री बन्द कर दी गयी। अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में जो भी साम्रगी उपयोग में लायी जाती है उसका कारोबार बन्द कर दिया गया। इस प्रकार देश कमजोर हो गया और विदेशियों के आक्रमण निरन्तर होते रहे। बाढ़ की तरह आक्रमणों का दौर शुरू हो गया। बहुत-से लोग देश से बाहर भागने लगे। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और सीमान्त प्रदेश से लोग भागने लगे। यूरोप में जितने जिप्सी हैं सभी भारतीय हैं, जो आठ-नौ सौ साल पहले भारत से पलायन कर गये। ये हजारों में नहीं, लाखों की संख्या में गये। रास्ते में अफगानिस्तान के उत्तरी हिस्से में उनका कत्ले-आम हुआ तो उस जगह का नाम ही पड़ गया हिन्दूकुश। कुश का

ममतलब होता है कत्ल, खुदकुशी शब्द तो जानते हो न। वहाँ हिन्दुओं की सामूहिक हत्या हुई, इसलिए उस पर्वत का नाम हो गया हिन्दूकुश।

इस तरह लाखों लोग देश छोड़कर भागे। पंजाब के लोग पश्चिम की ओर भागे। उत्तर प्रदेश के लोग नेपाल की ओर भागे। नेपाल भारत से पूरी तरह अलग हो गया अपनी रक्षा के लिए। नेपाल तक पहुँचना बड़ा दुर्गम है। ब्राह्मण लोग थोक-के-थोक दक्षिण भारत चले गये। वहाँ के सभी अय्यर, आयंगार वगैरह उत्तर भारत से आए हैं, जो अपने साथ संस्कृत और वेद ले गये। यह घटना सात-आठ सौ साल पहले तक होती रही और अकबर के काल तक चली। अकबर ने इस पर रोक लगायी। वह उदारमना शासक था। उसकी हिन्दू रानी थी, वह सभी हिन्दू उत्सव और पर्व मनाता था। उसके शासन काल में भारत शान्त हो गया था।

जहाँगीर के समय भी शान्ति रही। शाहजहाँ के समय भी सब ठीक-ठाक चला। शाहजहाँ के आते-आते अंग्रेज और पुर्तगाली भारत में इधर-उधर दिखाई पड़ने लगे थे, लेकिन उन्हें व्यापार की अनुमति या सुविधा नहीं दी गयी थी। अकबर ने साफ इंकार कर दिया, जहाँगीर ने बिल्कुल मना कर दिया, पर शाहजहाँ ने थोड़ी ढील दी। उन्हें यहाँ-वहाँ थोड़ा व्यापार करने की छूट मिल गयी। आगे की कहानी तुम जानते हो।

मुगल काल में जब लोग लाखों की संख्या में भाग रहे थे तो अखाड़े सक्रिय हो गये। समस्त संन्यासी समुदाय एकजुट हो गया। सामान्यत: हमलोग ऐसे किसी आंदोलन में भाग नहीं लेते जिसमें हिंसा हो। संन्यासी तो देश के धर्म शास्त्रों के, आध्यात्मिक परम्परा के रखवाले होते हैं। वे राजनीति और लड़ाई-झगड़े में नहीं पड़ते। लेकिन कभी-कभी ऐसा समय भी आता है जब धर्म की खातिर उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। उस समय दो विशाल आंदोलनों का लगभग एक साथ उदय हुआ। पहला था अखाड़ों का विरोध और संघर्ष। लेकिन उनका विरोध मंदिरों और अन्य धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्थानों की रक्षा तक सीमित था। और कहीं नहीं विरोध हुआ, राजा-महाराजाओं की रक्षा के लिए भी नहीं।

इसके साथ जो दूसरा विशाल आंदोलन शुरू हुआ वह था भक्ति आंदोलन। तुलसीदास, मीराबाई, सहजो बाई, चरणदास, कबीरदास, सूरदास और केशवदास जैसे साधुओं का भक्ति आंदोलन। हुमायूँ के शासन काल से लेकर शाहजहाँ के समय तक यह भक्ति-आन्दोलन बड़े जोर पर था। उस समय वैष्णव और शैव परम्परा के अनेक महान् संत और भक्त कवि हुए। दक्षिण में अलवार और नयनार संत हुए जो मधुर स्वर में भक्ति-गीत गाते थे। भक्ति-संतों की वाणी में ऐसी मिठास, ऐसा जादू था कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदाय प्रभावित हुए।

अव्वल अल्लाह नूर उपाया, कुदरत के सब बन्दे।
एक नूर से सब जग उपजा, कौन भले कौन मन्दे॥

इस तरह अखाड़ा आन्दोलन और भक्ति आन्दोलन की शुरुआत लगभग एक साथ हुई और दोनों अच्छे से चल रहे थे। फिर औंरगजेब का शासन काल आया। वह एक कट्टर, धर्मान्ध शासक था, जिसके समय फिर से हिन्दुओं का पलायन प्रारम्भ हो गया। उस समय फिर शिवाजी जैसे नायकों का अभ्युदय हुआ। वह इतिहास तुम लोग जानते हो। अखाड़ों का प्रयोजन लड़ना नहीं है। नहीं, संन्यासियों की भूमिका स्पष्ट है। उनका काम धर्म और सनातन परम्परा की रक्षा करना है।

आजकल अखाड़ों के क्रियाकलाप किस प्रकार के हैं?

अखाड़े सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं। उनके साधु-संन्यासी सारे देश में मौजूद हैं। आज संन्यासियों के तीन मुख्य वैदिक सम्प्रदाय हैं–दशनामी, उदासी और वैरागी। दशनामी संन्यासियों का वर्तमान संगठन आदि शंकराचार्य के सुधार के आधार पर खड़ा है। उन्होंने ही संन्यास परम्परा को पुनर्व्यवस्थित करके दशनामी

सम्प्रदाय खड़ा किया। गुरुनानक जी के पुत्र, श्रीचन्द जी ने उदासी सम्प्रदाय की स्थापना की और वैरागी सम्प्रदाय की स्थापना स्वामी रामानन्द जी द्वारा अयोध्या में की गयी। वही रामानन्द जी जो संत कबीर के गुरु थे।

स्वामी दत्तात्रेय ने भी तो कोई संन्यास परम्परा चलाई थी न?

उन्होंने एक अखाड़े का निर्माण किया था जो बाद में जूना अखाड़ा के नाम से विख्यात हुआ। दत्तात्रेय शंकराचार्य से भी पहले हुए थे। अखाड़ा शुरू करने के बाद वे धर्म, सम्प्रदाय या जाति का ख्याल किये बिना सभी को संन्यास की दीक्षा दिया करते थे। जो भी भगवान के रास्ते पर जाना चाहता, उसे दीक्षा देते थे। यह नहीं देखते थे कि वह सदाचारी है या दुराचारी, व्यभिचारी, चोर, डाकू है। कुछ नहीं देखते थे, सबको दीक्षा देते थे। उनका अखाड़ा जूना कहलाता है, जूना माने पुराना।

ब्रिटिश काल में ये अखाड़े सक्रिय थे या निष्क्रिय?

ब्रिटिश लोगों का इस देश के प्रति, इस देश की अर्थ-व्यवस्था या राजनीति के प्रति जो भी दृष्टिकोण रहा हो, लेकिन धर्म के प्रति उनका रवैया बुरा नहीं था। अंग्रेजों की दृष्टि धर्म-निरपेक्ष थी। वे संन्यासियों, अखाड़ों और मन्दिरों के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते थे। ब्रिटिश लोग इस मामले में सतर्क और सावधान रहे। आपको मालूम है न, अंग्रेज लोग बड़े व्यवहार-कुशल होते हैं। उन्हें सिर्फ रुपये-पैसे से मतलब है, तुम्हारे धर्म-कर्म की वे चिन्ता नहीं करते।

स्वामीजी, लोगों का कहना है कि ब्रिटिश लोग बड़े-बड़े मन्दिरों से स्वर्णाभूषण, हीरे, जवाहरात सब उठा कर ले गये। क्या यह सही है?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। अगर कुछ लिया भी होगा तो उसे सरकारी खजाने में डाल दिया होगा। ऐसी चीजें उन्होंने राजा-महाराजाओं, सेठ-नवाबों से ली हैं।

जिनको तुम ब्रिटिश कहते हो वे वास्तव में ऐंग्लो-सैक्सन जाति के लोग हैं। वे इंग्लैण्ड के मूल निवासी नहीं हैं। वे बाहर से इंग्लैण्ड आये और विजयी होकर वहीं बस गये। आज के समय इन्हीं लोगों को पढ़ने, लिखने, अध्ययन करने का सबसे शौक है। अंग्रेजी भाषा को इन्होंने बहुत समृद्ध बनाया है। ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर अंग्रेजी भाषा में कुछ लिखा न गया हो। धर्म-शास्त्र और मोक्ष-शास्त्र से लेकर काम-शास्त्र तक पर अंग्रेजी में पुस्तकें उपलब्ध हैं। मुझे एक बार यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कनफटा योगियों पर भी अंग्रेजी में किताब है। यह गोरखनाथ जी का पंथ है। उनपर भी शोध हुआ था और एक बहुत अच्छी ऐतिहासिक पुस्तक तैयार की गई। लगभग पचास साल पहले मुझे 15 पौंड वजन की एक मोटी किताब देखने को मिली। यह उस समय प्रकाशित हुई थी जिस समय वॉरेन हेस्टिंग्स भारत

का वायसराय था। किताब का नाम था 'Hindu Pantheon' जिसे हिन्दी में 'हिन्दू देव सभा' कहा जा सकता है। उस ग्रन्थ में सभी देवी-देवताओं का उल्लेख है। गणपति से शुरू करके ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, लक्ष्मी, हनुमान, चण्डी आदि सब पर शोधपरक लेख हैं। यह ग्रन्थ 18वीं सदी में लकड़ी के टाइप में इंग्लैण्ड में छपा था। किसी ने वह ग्रन्थ स्वामी शिवानन्द जी को भेंट किया था। मैं आश्रम का लाइब्रेरियन था, इसलिए मुझे वह भारी पुस्तक ढोनी पड़ी। उस पुस्तक में सभी सम्प्रदायों द्वारा धारण किये जानेवाले तिलकों की भी चर्चा है। इतिहास के किस काल में किस सम्प्रदाय द्वारा कौन-सा तिलक लगाया जाता था, ऐसी बातों तक का उल्लेख है।

मेरे कहने का अभिप्राय यही है कि ये एंग्लो-सेक्सन लोग विद्याविनोदी होती हैं। वे विद्याध्ययन, शोध और लेखन, सब में रुचि रखते हैं, साथ ही वे पैसे कमाना चाहते हैं। वे बनिया हैं, शुद्ध बनिया। पैसे के लिए कुछ भी कर सकते हैं। लेकिन जहाँ तक धर्म का प्रश्न है, वे इस मामले में खुले विचार रखते हैं। इसलिए तुम देखोगे कि चाहे स्वामी शिवानंद जी का आश्रम हो या विवेकानन्द जी का या नित्यानंद जी का या महेश योगी का, उनमें अधिकांश संन्यासी ऐंग्लो-सेक्सन समुदाय के लोग ही हैं। वे आराम से कपड़ा बदल लेते हैं, चुटिया भी रख लेते हैं, जनेऊ भी रख लेते हैं, राम-नाम भी बोलने लगते हैं, उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। इसलिए अंग्रेजों के समय एक-आध अफसर ने धर्म के मामले में कोई गलती की होगी तो की होगी, पर वह सरकार की नीति नहीं थी।

सच्चाई तो यह है कि महारानी विक्टोरिया ने योग सीखने के लिए भारत से योग शिक्षक बुलाया था। वह योगाभ्यास करती थी। अब तुम ही बताओ कि दुनिया में किस जाति ने योग को अधिकतम सहयोग और संरक्षण प्रदान किया है? वह कौन-सी जगह है जहाँ संन्यासियों को अपने काम में बिल्कुल कठिनाई नहीं हुई है? वह कौन-सी जगह है जहाँ बच्चे संन्यास ग्रहण करना चाहें तो घर में किसी को आपत्ति नहीं होती? जहाँ पासपोर्ट में लोग अपना नया आध्यात्मिक नाम डालना चाहें तो उसे तुरंत स्वीकार कर लिया जाता है? है कोई ऐसा देश?

ऐंग्लो-सेक्सन देशों में तुम यह सब कर सकते हो। अमेरिका में कर सकते हो, ऑस्ट्रेलिया में कर सकते हो, इंग्लैण्ड में कर सकते हो। लेकिन ग्रीस, स्पेन या फ्रांस में नहीं कर सकते। इंग्लैण्ड में अगर मैं किसी को स्वामी प्रज्ञामूर्ति नाम देता हूँ तो वह सीधे न्यायालय में जाकर इस आशय का शपथ-पत्र देगी, नाम में परिवर्तन करेगी और पासपोर्ट कार्यालय में जाकर अपने पुराने नाम की जगह स्वामी प्रज्ञामूर्ति नाम चढ़वा लेगी। यह दूसरे देशों में संभव नहीं होगा। इसलिए यह विश्वास करना मुश्किल है कि ब्रिटिश शासन में ऐसी धांधली हुई है। हाँ, किसी ने कुछ किया होगा, आखिर अफसरों में बदमाश सभी जगह रहते हैं।

ब्रिटिश भारतीयों को होली-दीवाली जैसे त्यौहार खुलकर मनाने देते थे?

देखो, स्पेन में कोई हिन्दू मन्दिर नहीं है, ग्रीस में हिन्दू मन्दिर नहीं है, इटली में हिन्दू मन्दिर नहीं है, फ्रांस में भी हिन्दू मन्दिर नहीं है, लेकिन इंग्लैण्ड में हैं, अमेरिका में हैं और ऑस्ट्रेलिया में भी हिन्दू मन्दिर हैं। ऐसी बात नहीं कि आज के दौर में ही बन पाए। इन देशों में लोग जब चाहते मन्दिर बना सकते थे। पहले लोग आर्थिक कारणों की वजह से नहीं बना पाते थे। गरीब लोग नौकरी करने इंग्लैण्ड गये थे, बेचारे मन्दिर क्या बनवाते। अब वे मालदार हो गये हैं तो धड़ल्ले से बनवा रहे हैं। इंग्लैण्ड में स्वामीनारायण मन्दिर बना है। उस मन्दिर का क्या कहना, शायद सबसे भव्य और सुंदर मंदिर है वह! पूरा संगमरमर का बना है, किसी दूसरी चीज का इस्तेमाल नहीं किया गया है। अमेरिका के होनोलूलू शहर में शिवजी और नंदी की विशाल पाषाण मूर्तियाँ हैं। भारत में बनवाकर विशेष हवाई जहाज में ले गए और वहाँ स्थापित किया। मैंने देखा है, नंदी की इतनी बड़ी मूर्ति जो मदुरै जैसी जगहों में ही देखने को मिलती है। अमेरिका के वृंदावन में हरे राम हरे कृष्ण वालों का बहुत बड़ा कृष्ण मंदिर है। वहाँ अमेरिकन लड़कियाँ साड़ी पहनकर, लंबी वाली चुटिया बनाकर दिनभर फर्श साफ करती हैं। मेरा मतलब यह है कि किसी भी राष्ट्र में उसके नागरिकों को किसी भी धर्म का अनुसरण करने की आजादी होनी चाहिए।

स्पेन में इस तरह के मंदिर नहीं हैं, क्योंकि स्पेन के संविधान में किसी दूसरे धर्म को अपना धार्मिक स्थान बनाने की अनुमति नहीं थी। अभी पाँच साल पहले उन्होंने इस कानून में संशोधन किया है। पर वहाँ कोई मालदार हिन्दू तो है नहीं जो बना सके। आखिर मंदिर बनवाने के लिए तो बहुत मालदार आदमी चाहिए न, करोड़ों रुपये देने हैं उसको।

पर स्पेन, ग्रीस और फ्रांस जैसे देशों में भी तो आपके आश्रम काफी समय से चल रहे हैं?

मंदिर और आश्रम में अंतर होता है। मंदिर एक धार्मिक स्थान है जबकि आश्रम नहीं है। आश्रम भले ही धार्मिक लोगों का, हिन्दुओं का हो सकता है, पर वह धार्मिक स्थान की श्रेणी में नहीं आता। आज दुनिया में कहीं पर भी आश्रम धार्मिक स्थान के रूप में नहीं गिना जाता। मंदिर को धार्मिक स्थान के रूप में गिनते हैं।

उन देशों में भी लोग पूजा-पाठ करते हैं, पर अपने घर में निजी ढंग से करते हैं। मंदिर का मतलब एक ऐसा सार्वजनिक स्थान जहाँ सब लोग आ-जा सकते हैं, किसी पार्क, लाइब्रेरी, रेलवे स्टेशन या एयरपोर्ट की तरह। मंदिर निजी नहीं होता। निजी मंदिर को ठाकुरबाड़ी कहते हैं। वह तो अपने घर-आँगन में बना सकते हो। मंदिर उसे कहते हैं जहाँ आम जनता नियम के मुताबिक दो-चार-छः घण्टे जा सकती है।

–18 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

सुख, आनन्द और कर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आत्मा जब अपने प्रारब्ध के अनुसार शरीर और मन प्राप्त कर लेती है तो उसके बाद किस चीज की खोज करती है? सुख की। यही जीवन का विधान है। एक बच्चा भी सुख की खोज में उतना ही तत्पर रहता है जितना एक बूढ़ा आदमी। दु:ख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति, यही जीवन का मुख्य संघर्ष होता है। सुख की अनुभूति के लिए तुम हर सम्भव प्रयास करते हो, लेकिन फिर भी सुख मिलता नहीं, क्योंकि तुम्हारा मानसिक ढाँचा सुख की अनुभूति के अनुरूप नहीं है। वास्तविक सुख तो 'आनन्द' की स्थिति है। आनन्द की इस अवस्था का अनुभव उसी मन को होता है, जो किसी बन्धन में नहीं होता।

जब मन बन्धन में रहता है तब तुम आनन्द की एक झलक-भर पा सकते हो, पर उस अनुभव को स्थायी नहीं बना सकते। सुख की उस क्षणिक झलक के बाद फिर विषाद आता है। लेकिन जिस समय वास्तविक आनन्द का अनुभव होता है, उस समय मन पूर्णतया बन्धनमुक्त हो जाता है। अपने ही जीवन को देख लो। जब तुम प्रसन्नचित्त रहते हो तब तुम कितना हर्ष, कितना उल्लास महसूस करते हो। सारा संसार जगमगाता-सा लगता है, मन हल्का लगता है, शरीर हल्का लगता है, मानो आनन्द की लहरों पर हिलोरें ले रहा हो। यह मुक्ति का, स्वतंत्रता का अनुभव है। और जब जीवन में दु:ख आता है तब बन्धन और बेचैनी की अनुभूति होती है, ऐसा लगता है मानो सिर पर कोई भारी बोझ आ पड़ा हो। मोक्ष का मतलब होता है इन दु:खों और क्लेशों से मुक्ति। जो बंधा हुआ है, उसे विमुक्त करना ही मोक्ष है। आखिर वह कौन-सा बन्धन है जिसने तुम्हें बांध रखा है? वह बन्धन न तो इन्द्रियों का है, और न ही मन का। इन्द्रियाँ और मन तो हमेशा साथ रहेंगे ही। बन्धन है क्लेशों का, अज्ञान का, अभिनिवेश का, जो सुख-शान्ति का हरण कर लेते हैं। इन बन्धनों से अपने आपको मुक्त करना है।

इन सुखों और दु:खों से कर्म अभिन्न रूप से जुड़े हैं। सत्त्व, रजस् और तमस् के तीनों गुण तथा भय, आहार, निद्रा और मैथुन रूपी चारों मूल प्रवृत्तियाँ सुख और दु:ख से प्रभावित होती हैं। एक तामसिक व्यक्ति भी सत्त्व का अनुभव करेगा जब उसके जीवन में सुख-शान्ति होगी, और एक सात्त्विक व्यक्ति दु:ख के समय तामसिक अवस्था का अनुभव करेगा। इसलिए इस संसार में कर्मों का लक्ष्य यही है कि किसी-न-किसी विधि से आनन्द की प्राप्ति हो।

ईश्वर ने सुख और दु:ख की कल्पना की और प्रकृति ने उन्हें हमारे स्वभाव में प्रत्यारोपित कर दिया। सुख हमें दुर्बल बनाता है जबकि दु:ख पुरुषार्थ को जागृत करता है। जो लोग सुख के पीछे भागते हैं, वे कमजोर बने रहते हैं, लेकिन जो दु:ख को झेलते हैं, उनका मन मजबूत बनता है। संसार में जितनी भी उत्कृष्ट उपलब्धियाँ हुई हैं, उनका कारण सुखद परिस्थितियाँ नहीं थीं, बल्कि वे सब दु:ख के साथ संघर्ष का परिणाम हैं। यदि सिद्धार्थ ने मानव-पीड़ा को न देखा होता तो वे कभी बुद्ध नहीं बन पाते। इसीलिए ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दु:ख और पीड़ा को अपनी साधना और विकास का आधार बनाओ। दु:खद परिस्थितियों में पुरुषार्थ की जो प्रवृत्ति तुम्हारे अन्दर जागृत होगी और इससे तुम्हें जिस सत्त्व की प्राप्ति होगी, वह अनुपम, अद्वितीय होगा।

महाभारत युद्ध के बाद माता कुन्ती ने भगवान कृष्ण से यही बात कही थी। युद्ध समाप्त हो चुका था। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो चुका था, राज्य में समृद्धि और शान्ति लौट आई थी। श्रीकृष्ण ने अपने राज्य वापस लौटने का निश्चय किया। उन्होंने सब लोगों से विदा ली, किन्तु जब वे कुन्ती के पास आए तो कुन्ती ने उनसे कहा, 'अब जब हमारे यहाँ सुख, शान्ति और समृद्धि है, तुम लौट रहे हो। जब हम दु:ख-तकलीफ में थे, तब तुम याद करते ही तत्काल हमारे सामने उपस्थित हो जाते थे। मैं तो यही चाहती हूँ कि हमारे जीवन में सदा दु:ख ही दु:ख रहे, ताकि हम तुम्हें याद करते रहें और तुम्हारा पावन सान्निध्य बना रहे।' आज तक इतिहास में ऐसी प्रार्थना केवल कुन्ती ने ही की है। कितनी पीढ़ियाँ आईं और गईं, लेकिन किसी के मन से ऐसे उद्‌गार नहीं निकले कि भगवान! मुझे दु:ख दो, क्योंकि दु:ख में ही तुम साथ रहते हो। सुख में तो तुम हम से दूर चले जाते हो।

आध्यात्मिकता की ओर, ईश्वर की ओर, साधु-सन्तों की ओर कौन अभिमुख होता है? वही जो दु:खी होता है। कष्ट और पीड़ा हमें ईश्वर के निकट लाते हैं। सुख-दु:ख प्रकृति के कारण होते हैं, ईश्वर के कारण नहीं। ईश्वर हमें न हर्ष में डालना चाहते हैं, न विषाद में। वे चाहते हैं कि हम जिस भी परिस्थिति में, जिस भी अवस्था में रहें, संतोष के साथ रहें। प्रकृति योग और माया के रूप में प्रकट होती है और वह सुख और दु:ख, दोनों को ही लाती है। जिस व्यक्ति की इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं, उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। बाकी सभी सुख और दु:ख

के साथ जूझते रहते हैं। अनेक लोग स्थायी आनन्द की खोज में आध्यात्मिकता की ओर मुड़ते हैं। यह अपनी जगह ठीक है। तुम्हें सुख और आनन्द का अनुभव अवश्य करना चाहिए, लेकिन अपने जीवन का उद्देश्य मत भूलो। तुम्हें अपने आपको सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त करना है, ताकि तुम पूर्ण स्वतंत्रता और मुक्ति का अनुभव कर सको।

प्रकृति के आयाम में गुणों की वजह से ही हम सुख और दु:ख का अनुभव करते हैं। जब कोई तमोगुण-प्रधान व्यक्ति कर्म करता है तब वह अपने आपको बन्धन में बांध लेता है। जब कोई सत्त्वगुण-प्रधान व्यक्ति कर्म करता है तब वह अपने आपको बन्धनों से मुक्त कर लेता है। रजोगुण-प्रधान व्यक्ति को मिश्रित परिणाम की प्राप्ति होती है।

आश्रम में तुम वही काम करते हो जो तुम अपने घर में करते हो—खाना पकाना, साफ-सफाई करना, झाड़ू-पोंछा लगाना, योजनाएँ बनाना और उन्हें क्रियान्वित करना। कार्य-प्रणाली में कोई अन्तर नहीं होता। अन्तर रहता है तुम्हारी समझ और ज्ञान में। आश्रम परिवेश से, सत्संग, साधना, श्रद्धा और समर्पण से धीरे-धीरे यह समझ में आने लगता है कि क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी, क्या उचित है और क्या अनुचित। यही काम घर पर रहकर करने से विचारों में ऐसी स्पष्टता नहीं आ पाती। आश्रम में सिर पर गुरु का डण्डा पड़ता है, लेकिन घर में डण्डा चलाने वाला कौन है? जब गुरु का डण्डा पड़ता है तो थोड़ी-सी जागृति आती है, तुम सोचने लगते हो कि तुम सही कर रहे हो या गलत। तुम अपने प्रति सजग बनते हो और तुम्हारे भीतर द्रष्टा भाव जागने लगता है। यह एक दिन में सिद्ध होने वाली चीज नहीं, लेकिन एक बार यह प्रक्रिया शुरू हो जाती है तब तुम धीरे-धीरे अपने कर्मों और विचारों के साक्षी बनने लगते हो। यही वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षा है।

जीवन रूपी वृक्ष का बीजारोपण और कटाई-छँटाई

आज तुम एक बीज बोते हो तो कुछ समय बाद वह अंकुरित होगा। और जब दस साल बाद उसमें फल आएँगे तब तुम्हें अपने बीजारोपण का परिणाम देखने को मिलेगा। आध्यात्मिक जीवन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। इसलिए जल्दबाजी मत करो, धीरज से काम लो। ऐसा नहीं कि ध्यान शुरू करते ही दिव्य अनुभवों की अपेक्षा करने लग जाओ। ध्यान के बीज का रोपण करो, उसकी रक्षा करो, उसका पोषण करो, उसकी देख-भाल करो और दस साल बाद तुम्हें ध्यान के परिणाम अवश्य मिलेंगे। एक सप्ताह में कुछ नहीं होने वाला और ऐसी अपेक्षा भी नहीं करना। प्रकृति अपने नियमों के अनुसार चलती है। जीवन में मनुष्य का प्रयास यही होना चाहिए कि वह सही बीज बोये और उन बीजों के अंकुरित-पल्लवित-पुष्पित होने के लिए सही वातावरण बनाये।

अपने कर्मों की गुणवत्ता में परिवर्तन लाना जरूरी है; नकारात्मक और विनाशकारी होने के बजाय उन्हें रचनात्मक और मंगलकारी बनाना चाहिए। अपनी मूल प्रवृत्तियों के अवलोकन से, सही समय पर सही कार्य करने से और अपने स्वभाव को बेहतर बनाकर हम अपने कर्मों को सही दिशा में रूपान्तरित कर सकते हैं।

अपने स्वभाव को कैसे सुधारा जाए? यदि तुम किसी बढ़ते हुए पौधे के विकास में कोई हस्तक्षेप नहीं करते तो उसकी टहनियाँ सभी दिशाओं में फैलती जाएँगी। अगर तुम चाहते हो कि पौधा ऊपर की ओर सीधा बढ़े तो तुम्हें उसकी कटाई-छंटाई शुरू से ही करनी होगी। यही तुम अपने जीवन के साथ भी करो। तुमने कभी अपने जीवन रूपी वृक्ष की कटाई-छँटाई नहीं की है। एक डाल टेढ़े-मेढ़े ढंग से एक दिशा में बढ़ जाती है तो दूसरी डाल दूसरी दिशा में। तुम यह टेढ़ा-मेढ़ा वृक्ष अपने माली को दिखाकर कहते हो, 'मैं चाहता हूँ कि यह पेड़ सीधा बढ़े।' माली कहता है, 'मुझे इन टेढ़ी-मेढ़ी टहनियों को आरी से काटना होगा।' तुम कहते हो, 'नहीं, नहीं, आरी मत चलाओ, पेड़ को तकलीफ होगी।' माली कहता है, 'दूसरा कोई चारा नहीं।'

हम लोग सही जीवनशैली के महत्त्व को आज तक नहीं समझ पाए हैं। यदि कोई शुरू से ही सही ढंग से जीवन व्यतीत करे, शुरू से ही अपने संस्कार, स्वभाव और व्यवहार की समुचित कटाई-छँटाई करे तो प्रारम्भिक प्रयास के बाद हमारा जीवन रूपी वृक्ष अपने आप सीधा बढ़ेगा।

साधना की आवश्यकता

यह कटाई-छँटाई योग साधना के माध्यम से होती है। योग साधना का अर्थ है अपने स्वभाव का रूपान्तरण। यह तुम्हें स्वयं करना है। आध्यात्मिक जीवन तुम्हें अपने स्वभाव की सीमाओं से अवगत कराता है। ध्यान के दौरान तुम यही देखते हो। जब तुम अपने स्वभाव के इस सीमित पक्ष को देखते हो, तब उस समय भय या अपराध की भावना पैदा होती है। जब तुम एक ऐसी मानसिक अवस्था को रूपान्तरित करने का प्रयास करते हो, जिसके साथ तुम वर्षों से रहते आए हो, तब तुम एक मानसिक संकट से गुजरते हो। मन में कुण्ठाएँ पैदा होने लगती हैं। जब

आरम्भ में ही कटाई-छँटाई नहीं की जाती तब छोटी-छोटी टहनियाँ बड़ी होकर मजबूत शाखाएँ बन जाती हैं और तब उनको सीधा करना असम्भव हो जाता है।

जिस प्रकार हम एक पेड़ के सही विकास के लिए उसकी शुरू से कटाई-छँटाई करते हैं, उसी प्रकार हमें अपने स्वभाव की भी कटाई-छँटाई करनी है—एक नये दृष्टिकोण, एक नयी मनोवृत्ति को अपनाकर। गिलास आधा भरा है या आधा खाली है? गिलास को तुम किस दृष्टिकोण से देखते हो? यदि तुम जीवन के अभावों से चिन्तित हो तो तुम कहोगे कि गिलास आधा खाली है, और यदि तुम जीवन की प्राप्तियों से, उपलब्धियों से अपने आप को जोड़ते हो तो कहोगे कि यह आधा भरा है। परिस्थिति वही है, अंतर केवल दृष्टिकोण में है। जब तुम्हारा मन सूझ-बूझ, बुद्धिमानी और ज्ञान से सम्बन्ध जोड़ता है, तब इसका परिणाम एक सकारात्मक दृष्टिकोण में दिखलाई देता है।

जब मन में ज्ञान का उदय होता है तब मनोवृत्ति बदल जाती है। जब मन इन्द्रियों के साथ जुड़ा होता है तब प्रतिक्रिया भिन्न होती है। जब मन किसी एक इच्छा से जुड़ा होता है तब भी प्रतिक्रिया अलग होती है।

अपने स्वभाव का अवलोकन करने से, समझदारी, ज्ञान और सजगता के माध्यम से अपने चरित्र का रूपान्तरण किया जा सकता है। समझदारी और सजगता के संयोग से ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान के जरिये ही हम अपने चरित्र की कटाई-छँटाई कर सकते हैं, उसे सुन्दर बना सकते हैं। मूल प्रवृत्तियों का प्रबन्धन ध्यान के माध्यम से होता है, और स्वभाव का प्रबन्धन होता है सजगता, समझदारी तथा कटाई-छँटाई से।

—'कर्म और कर्मयोग' से उद्धृत

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

_योगा_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

_योगविद्या_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

अप्रैल 8-14	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 22-28	हठ योग यात्रा 3
अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1
	क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।